श्रीगणेशाय नमः ॥

अथ स्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतश्रीअयोध्यामाहात्म्यप्रारम्भः ॥

दो० । विष्णुशर्म द्विज जिमि थप्यो देव विष्णु हरिनाम । सोइ प्रथम अध्याय में वर्णित चरित ललाम ॥ सत्यवती के हृदय को आनन्द देनेवाले पराशरजी के पुत्र व्यासजी उत्कर्ष को प्राप्त होवें जिनके मुखरूपी कमल से निकला हुआ वचनरूपी अमृत संसार पीता है ॥ १ ॥ नारायण व नरोत्तम नर को और सरस्वती देवी को प्रणाम करके तदनन्तर जय अर्थात् ग्रन्थको कहै ॥ २ ॥ व्यासजी बोले कि हिमाचलवासी सब वेदों के पारगामी मुनि थे व महात्मा लोग नैमिषारण्यनिवासी

जयति पराशरसूनुः सत्यवतीहृदयनन्दनो व्यासः ॥ यस्यास्यकमलगलितं वाङ्मयममृतं जगत्पिबति ॥ १ ॥ नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ॥ देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥ २ ॥ व्यास उवाच ॥ हिमवद्वासिनः सर्वे मुनयो वेदपारगाः ॥ त्रिकालज्ञा महात्मानो नैमिषारण्यवासिनः ॥ ३ ॥ येऽर्बुदारण्यनिरता दण्डकारण्यवासिनः ॥ महेन्द्राद्रिरता ये वै ये च विन्ध्यनिवासिनः ॥ ४ ॥ जम्बूवनरता ये च ये गोदावरिवासिनः ॥ वाराणसीश्रिता ये च मथुरावासिनस्तथा ॥ ५ ॥ उज्जयिन्यां रता ये च प्रथमाश्रमवासिनः ॥ द्वारावतीश्रिता ये च बदर्याश्रयिणस्तथा ॥ ६ ॥ मायापुरीश्रिता ये च ये च कान्तीनिवासिनः ॥ एते चान्ये च मुनयः सशिष्या बहवोऽमलाः ॥ ७ ॥

त्रिकाल जाननेवाले थे ॥ ३ ॥ और जो अर्बुदारण्यपरायण तथा जो दण्डकवननिवासी थे और जो महेन्द्राचलपरायण और जो विन्ध्यवासी थे ॥ ४ ॥ व जो जम्बूवनपरायण व जो गोदावरीवासी थे तथा जो काशीवासी व जो मथुरावासी थे ॥ ५ ॥ और जो उज्जयिनी में बसते थे व जो प्रथमाश्रमवासी थे और जो द्वारका के आश्रित व जो बदरिकाश्रमवासी थे ॥ ६ ॥ और जो मायापुरी में आश्रित और जो कान्तीनिवासी थे ये और भी शिष्योंसमेत बहुत से जो निर्मल मुनि लोग थे ॥ ७ ॥

महाक्षेत्र कुरुक्षेत्र में महात्मा रामराजा का बारह वर्षवाला यज्ञ वर्तमान होने पर वे सब बुलाये हुए निर्मल मुनि लोग आये ॥ ८ ॥ वेदों व वेदाङ्गों के पारगामी वे सब शुद्धमनवाले मुनिलोग नहाकर यथायोग्य जपादिक कर्म करके ॥ ९ ॥ वेदवेदाङ्गपारगामी भारद्वाज मुनि को आगे करके विचित्र मुनियों के आसनों पै क्रम से ॥ १० ॥ बैठ गये और उस समय अनेक भांति के तीर्थों में आश्रित सुखासीन उन्होंने यज्ञ के अन्य कर्मों में परस्पर कथा किया ॥ ११ ॥ तदनन्तर उन शुद्धचित्त महात्माओं की कथा की समाप्ति में वहां बड़े बुद्धिमान् व बड़े तेजस्वी सूतजी आगये ॥ १२ ॥ व्यासजी के शिष्य पुराण के ज्ञाता वह रोमहर्षणनामक

कुरुक्षेत्रे महाक्षेत्रे सत्रे द्वादशवार्षिके ॥ वर्तमाने च रामस्य क्षितीशस्य महात्मनः ॥ समागताः समाहूताः सर्वे ते मुनयोऽमलाः ॥ ८ ॥ सर्वे ते शुद्धमनसो वेदवेदाङ्गपारगाः ॥ तत्र स्नात्वा यथान्यायं कृत्वा कर्म जपादिकम् ॥ ९ ॥ भारद्वाजं पुरस्कृत्य वेदवेदाङ्गपारगम् ॥ आसनेषु विचित्रेषु वृष्यादिषु ह्यनुक्रमात् ॥ १० ॥ उपविष्टाः कथाश्चक्रुर्नानातीर्थाश्रितास्तदा ॥ कर्मान्तरेषु सत्रस्य सुखासीनाः परस्परम् ॥ ११ ॥ कथान्तेषु ततस्तेषां मुनीनां भावितात्मनाम् ॥ आजगाम महातेजास्तत्र सूतो महामतिः ॥ १२ ॥ व्यासशिष्यः पुराणज्ञो रोमहर्षणसंज्ञकः ॥ तान्प्रणम्य यथान्यायं मुनीनुपविवेश सः ॥ उपविष्टो यथान्यायं मुनीनां वचनेन सः ॥ १३ ॥ व्यासशिष्यं मुनिवरं सूतं वै रोमहर्षणम् ॥ तं पप्रच्छुर्मुनिवरा भारद्वाजादयोऽमलाः ॥ १४ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ त्वत्तः श्रुता महाभाग नानातीर्थाश्रिताः कथाः ॥ सरहस्यानि सर्वाणि पुराणानि महामते ॥ १५ ॥ सांप्रतं श्रोतुमिच्छामः सरहस्यं सनातनम् ॥ अयोध्याया महापुर्या महिमानं गुणोज्ज्वलम् ॥ १६ ॥ कीदृशी सा सदा मेध्यायोध्या विष्णुप्रिया पुरी ॥ आद्या सा गीयते

मुनि उन मुनियों को यथायोग्य प्रणाम करके मुनियों के वचन से यथोचित बैठगये ॥ १३ ॥ उन व्यासशिष्य मुनिनाथ रोमहर्षण सूतजी से निर्मल भारद्वाजादिक मुनिश्रेष्ठों ने पूछा ॥ १४ ॥ (ऋषिलोग बोले) कि हे महाभाग, महामते ! अनेक भांति के तीर्थों के आश्रित कथायें तुमसे सुनी गईं और रहस्य समेत सब पुराण सुने गये ॥ १५ ॥ इस समय हम सब रहस्यसमेत व गुणों से उज्ज्वल अयोध्या महापुरी की महिमा सुना चाहते हैं ॥ १६ ॥ कि सदैव पवित्र वह

कैसी विष्णुकी प्यारी अयोध्यापुरी है और वह पुरियों के मध्य में मुक्तिदायिनी आदिपुरी गाई जाती है ॥ १७ ॥ उसका कैसा स्थान और उसमें कौन राजा हुए हैं और कौन पवित्रतीर्थ हैं व उनमें कैसा माहात्म्य है ॥ १८ ॥ व हे सूत ! अयोध्याजी के सेवन से मनुष्यों को कैसा फल होता है हे सूतजी ! उसका कौन चरित्र और कौन नदियां व कौन सङ्गम हैं ॥ १९ ॥ हे महामते ! उसमें स्नान व दान से कौन पुण्य होता है हे गुणाधिक, सूत ! वह सब तुमसे सुना चाहते हैं ॥ २० ॥ यह सब क्रम से तुम सत्य जानते हो इस समय अयोध्या महापुरी का माहात्म्य तुम कहने योग्य हो ॥ २१ ॥ सूतजी बोले कि हे तपोधनो !

वेदे पुरीणां मुक्तिदायिका ॥ १७ ॥ संस्थानं कीदृशं तस्यास्तस्यां के च महीभुजः ॥ कानि तीर्थानि पुण्यानि माहात्म्यं तेषु कीदृशम् ॥ १८ ॥ अयोध्यासेवनान्नृणां फलं स्यात्सूत कीदृशम् ॥ किं चरित्रं सूत तस्याः का नद्यः के च संगमाः ॥ १९ ॥ तत्र स्नानेन किं पुण्यं दानेन च महामते ॥ तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामस्त्वत्तः सूत गुणाधिक ॥ २० ॥ एतत्सर्वं क्रमेणैव तथ्यं त्वं वेत्थ सांप्रतम् ॥ अयोध्याया महापुर्या माहात्म्यं वक्तुमर्हसि ॥ २१ ॥ सूत उवाच ॥ व्यासप्रसादाज्जानामि पुराणानि तपोधनाः ॥ सेतिहासानि सर्वाणि सरहस्यानि तत्त्वतः ॥ २२ ॥ तं प्रणम्य प्रवक्ष्यामि माहात्म्यं भवदग्रतः ॥ अयोध्याया महापुर्या यथावत्सरहस्यकम् ॥ २३ ॥ विद्यावन्तं विपुलमतिदं वेदवेदाङ्गवेद्यं श्रेष्ठं शान्तं शमितविषयं शुद्धतेजोविशालम् ॥ वेदव्यासं सततविनतं विश्ववेद्यैकयोनिं पाराशर्यं परमपुरुषं सर्वदाहं नमामि ॥ २४ ॥ ॐ नमो भगवते तस्मै व्यासायामिततेजसे ॥ यस्य प्रसादाज्जानामि ह्ययोध्यामहिमा

मैं व्यासजी के प्रसाद से इतिहाससमेत व रहस्योंसमेत सब पुराणों को यथार्थ जानता हूं ॥ २२ ॥ उन व्यासजी को प्रणाम करके आपके आगे रहस्यसमेत अयोध्या महापुरी का माहात्म्य यथायोग्य कहता हूं ॥ २३ ॥ विद्यावान् व विपुलमतिदायक, वेदवेदाङ्गवेद्य, श्रेष्ठ, शान्त, शान्तविषय व शुद्धतेज से विशाल, सदैव नम्र, संसार से जानने योग्य व उसको उत्पन्न करनेवाले पराशरसूनु परमपुरुष वेदव्यासजी को मैं सदैव प्रणाम करता हूं ॥ २४ ॥ उन अतुलतेजवाले

भगवान् वेदव्यासजी के लिये मैं प्रणाम करता हूं कि जिनके प्रसाद से अयोध्या की महिमा को जानता हूं ॥ २५ ॥ शिष्योंसमेत सब मुनि सावधान होकर सुनिये मैं अयोध्या का महोदय माहात्म्य कहता हूं ॥ २६ ॥ नारदजी ने अगस्त्यजी से कहा है उसको स्वामिकार्त्तिकेयजी ने सुना है पुरातन समय अगस्त्यजी ने उसको व्यासजी से कहा है ॥ २७ ॥ हे तपोधनो ! मैंने इसको व्यासजी से पाया है उसको मैं आदर से सुनने की इच्छावाले तुम लोगों से कहता हूं ॥ २८ ॥ अलसी के पुष्प के समान श्याम, रावणविनाशक, कमललोचन, अविकारी, परमात्मा, श्रीरामजी को मैं प्रणाम करता हूं ॥ २९ ॥ वह पवित्र अयोध्यापुरी पापियों को दुर्लभ

महम् ॥ २५ ॥ शृण्वन्तु मुनयः सर्वे सावधानाः सशिष्यकाः ॥ माहात्म्यं कथयिष्यामि अयोध्याया महोदयम् ॥ २६ ॥ उदीरितमगस्त्याय स्कन्देनाश्रावि नारदात् ॥ अगस्त्येन पुरा प्रोक्तं कृष्णद्वैपायनाय तत् ॥ २७ ॥ कृष्णद्वैपायना चैतन्मया प्राप्तं तपोधनाः ॥ तदहं वच्मि युष्मभ्यं श्रोतुकामेभ्य आदरात् ॥ २८ ॥ नमामि परमात्मानं रामं राजीव लोचनम् ॥ अतसीकुसुमश्यामं रावणान्तकमव्ययम् ॥ २९ ॥ अयोध्या सा परा मेध्या पुरी दुष्कृतिदुर्लभा ॥ कस्य सेव्या च नायोध्या यस्यां साक्षाद्धरिः स्वयम् ॥ ३० ॥ सरयूतीरमासाद्य दिव्या परमशोभना ॥ अमरावती निभा प्रायः श्रिता बहुतपोधनैः ॥ ३१ ॥ हस्त्यश्वरथपत्त्याढ्या संपद्भुच्चा च संस्थिता ॥ प्राकाराढ्यप्रतोलीभि स्तोरणैः काञ्चनप्रभैः ॥ ३२ ॥ सानूपवेषैः सर्वत्र सुविभक्तचतुष्टया ॥ अनेकभूमिप्रासादा बहुभित्तिसुविक्रिया ॥ ३३ ॥ पद्मोत्फुल्लशुभोदाभिर्वापीभिरुपशोभिता ॥ देवतायतनैर्दिव्यैर्वेदघोषैश्च मण्डिता ॥ ३४ ॥ वीणावेणुमृदङ्गादि

है और वह अयोध्यापुरी किसके सेवनयोग्य नहीं है जिसमें आपही साक्षात् विष्णुजी हैं ॥ ३० ॥ सरयू के किनारे प्राप्त होकर अमरावती के समान उस दिव्य परमोत्तम पुरी में प्रायः बहुत से तपस्वी स्थित रहते हैं ॥ ३१ ॥ हाथी, घोड़े, रथ व पैदलों से संयुत तथा सम्पत्तियों से उच्च स्थित वह पुरी छहरदिवाली से युक्त और रथ्या व सुवर्णसदृश बाहरी द्वारों से युक्त है ॥ ३२ ॥ व जलप्राय वेषोंसमेत सब कहीं राजमार्ग विभक्त हैं और अनेक भूमियोंवाले मन्दिर तथा बहुत दीवारों के भेद हैं ॥ ३३ ॥ व प्रफुल्लितकमलों से शुभजलवाली बावलियों से शोभित है व दिव्य देवमन्दिरों व वेदशब्दों से भूषित है ॥ ३४ ॥ व वीणा, वेणु, मृदङ्गादि

हे विष्णो, भगवन् ! प्रसन्न होवो हे पुरुषोत्तम ! प्रसन्न होवो हे देवदेवेश, कमलनयन ! प्रसन्न होवो ॥ ७६ ॥ हे अचिन्त्य, कृष्ण ! जय हो हे अव्यय, विष्णो ! तुम्हारी जय हो हे यज्ञपते, नाथ ! तुम्हारी जय हो हे विभो, विष्णो, स्वामिन् ! जय हो ॥ ८० ॥ हे पापहर, अनन्त ! तुम्हारी जय हो हे जन्मज्वरापह ! तुम्हारी जय हो कमलनाभ के लिये नमस्कार है व कमलमाली के लिये प्रणाम है ॥ ८१ ॥ हे सर्वेश, भूतेश ! प्रणाम है हे कैटभसूदन ! तुम्हारे लिये प्रणाम है हे जगन्मूल, जगत्पते ! त्रिलोक के स्वामी आपके लिये प्रणाम है ॥ ८२ ॥ देवाधिदेव के लिये प्रणाम है व नारायण के लिये नमस्कार है कृष्ण

देवेश प्रसीद कमलेक्षण ॥ ७६ ॥ जय कृष्ण जयाचिन्त्य जय विष्णो जयाव्यय ॥ जय यज्ञपते नाथ जय विष्णो पते विभो ॥ ८० ॥ जय पापहरानन्त जय जन्मज्वरापह ॥ नमः कमलनाभाय नमः कमलमालिने ॥ ८१ ॥ नमः सर्वेश भूतेश नमः कैटभसूदन ॥ नमस्त्रैलोक्यनाथाय जगन्मूल जगत्पते ॥ ८२ ॥ नमो देवाधिदेवाय नमो नारायणाय वै ॥ नमः कृष्णाय रामाय नमश्चक्रायुधाय च ॥ ८३ ॥ त्वं माता सर्वलोकानां त्वमेव जगतः पिता ॥ भयार्तानां सुहृन्मित्रं त्वं पिता त्वं पितामहः ॥ ८४ ॥ त्वं हविस्त्वं वषट्कारस्त्वं प्रभुस्त्वं हुताशनः ॥ करणं कारणं कर्ता त्वमेव परमेश्वरः ॥ ८५ ॥ शङ्खचक्रगदापाणे मां समुद्धर माधव ॥ ८६ ॥ प्रसीद मन्दरधर प्रसीद मधुसूदन ॥ प्रसीद कमलाकान्त प्रसीद भुवनाधिप ॥ ८७ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ इत्येवं स्तुवतस्तस्य मनो भक्त्या महात्मनः ॥ आवि

व राम के लिये प्रणाम है और चक्रायुधवाले के लिये प्रणाम है ॥ ८३ ॥ सब लोकों की तुम माता हो और तुम्हीं संसार के पिता हो और भय से विकल पुरुषों के लिये सुहृद् व मित्र तुम्हीं हो और पिता व पितामह तुम्हीं हो ॥ ८४ ॥ तुम हवि हो और तुम्हीं वषट्कार हो और तुम प्रभु हो व तुम अग्नि हो और करण, कारण, कर्ता व परमेश्वर तुम्हीं हो ॥ ८५ ॥ हे शंखचक्रगदापाणे, माधव ! मुझको उद्धारिये ॥ ८६ ॥ हे मन्दरधारिन् ! प्रसन्न होवो हे मधुसूदन ! प्रसन्न होवो हे कमलाकान्त ! प्रसन्न होवो हे भुवनाधिप ! प्रसन्न होवो ॥ ८७ ॥ अगस्त्यजी बोले कि इसप्रकार स्तुति करते हुए उस महात्माके मनकी भक्तिसे विश्वात्मा

तीर्थयात्रा करता हुआ इसलिये अयोध्या को आया कि साक्षात् विष्णुजी यहां बसते हैं ॥ ७० ॥ मनसे विचार करता हुआ वह वीर तप करने के लिये उद्यत हुआ और शाक, मूल व फलको भोजन करनेवाले उस ब्राह्मणने तप किया ॥ ७१ ॥ वह बड़ा तपस्वी ग्रीष्मकाल में पञ्चाग्निमध्यमें स्थित हुआ व वर्षाऋतुमें निरालम्ब तथा हेमन्तऋतु में तड़ागमें ॥ ७२ ॥ नहाकर यथोक्तविधि से विष्णुका पूजनकर इन्द्रियों का समूह वश करके शुद्धचित्तसे ॥ ७३ ॥ विष्णुजी में मनको लगाकर प्राणायाम करके बुद्धिमान् ॐकार के उच्चारण से हृदय में कमल को विकास करते हुए ॥ ७४ ॥ उसके मध्यमें विधिपूर्वक सूर्य, चन्द्रमा व अग्निमण्डल कल्पना

वसेदिति ॥ ७० ॥ चिन्तयन्मनसा वीरस्तपः कर्तुं समुद्यतः ॥ स वै तत्र तपस्तेपे शाकमूलफलाशनः ॥ ७१ ॥ ग्रीष्मे पञ्चाग्निमध्यस्थो ह्यतपत्स महातपाः ॥ वार्षिके च निरालम्बो हेमन्ते च सरोवरे ॥ ७२ ॥ स्नात्वा यथोक्तविधिना कृत्वा विष्णोस्तथार्चनम् ॥ वशीकृत्येन्द्रियग्रामं विशुद्धेनान्तरात्मना ॥ ७३ ॥ मनो विष्णौ समावेश्य विधाय प्राण संयमम् ॥ ॐकारोच्चारणाद्धीमान्हृदि पद्मं विकासयन् ॥ ७४ ॥ तन्मध्ये रविसोमाग्निमण्डलानि यथाविधि ॥ कल्पयित्वा हरिं मूर्तं यस्मिन्देशे सनातनम् ॥ ७५ ॥ पीताम्बरधरं विष्णुं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ तं च पुष्पैः समभ्यर्च्य मनस्तस्मिन्निवेश्य च ॥ ७६ ॥ ब्रह्मरूपं हरिं ध्यायञ्जपन्वै द्वादशाक्षरम् ॥ वायुभक्षः स्थितस्तत्र विप्रस्त्रीन्वत्सरा न्वसन् ॥ ७७ ॥ ततो द्विजवरो ध्यात्वा स्तुतिं चक्रे हरेरिमाम् ॥ प्रणिपत्य जगन्नाथं चराचरगुरुं हरिम् ॥ विष्णु शर्माथ तुष्टाव नारायणमतन्द्रितः ॥ ७८ ॥ विष्णुशर्मोवाच ॥ प्रसीद भगवन्विष्णो प्रसीद पुरुषोत्तम ॥ प्रसीद देव

करके जिस देश में सनातन विष्णुमूर्ति को कल्पित करै ॥ ७५ ॥ वहां पीतवसनधारी व शंख, चक्र, गदाधारी उन विष्णुजी को पुष्पों से पूजकर व उनमें मन लगाकर ॥ ७६ ॥ ब्रह्मरूप हरि को ध्यान व द्वादशाक्षर जप करता हुआ पवनभोजी ब्राह्मण वहां तीन वर्षतक बसता रहा ॥ ७७ ॥ तदनन्तर श्रेष्ठ ब्राह्मण ने ध्यान करके विष्णुकी यह स्तुति किया चराचर गुरु जगदीश नारायणजी को प्रणाम करके निरालसी विष्णुशर्माने स्तुति किया ॥ ७८ ॥ (विष्णुशर्मा बोला) कि

हे तपोधन ! इस अयोध्यापुरी की महिमा कौन कहसक्ता है कि जिसमें स्वयं विष्णुदेवजी साक्षात् आपही आदर समेत बसते हैं ॥ ६३ ॥ पूर्वदिशा में सहस्र धारासे लगाकर योजन भर वैसेही पश्चिमदिशा में योजन भर समस्थान से अवधि है ॥ ६४ ॥ और दक्षिण व उत्तरभाग में सरयू व तमसा अवधि है यह क्षेत्रका स्थान विष्णुका अन्तर्गृह स्थित है हे विप्र ! यह विष्णु की पुरी मछली के आकारवाली कही गई है ॥ ६५ ॥ हे द्विज ! पश्चिम में गोप्रतार स्थान तक उसका मस्तक है ॥ ६६ ॥ व पूर्व ओर पीठ का भाग है और दक्षिण, उत्तर मध्यम भाग है हे महाभाग ! उस विष्णुपुरी में नामसे विष्णुजी आपही पहले देखे

केन वर्णयितुं शक्यो महिमास्यास्तपोधन ॥ यत्र साक्षात्स्वयं देवो विष्णुर्वसति सादरः ॥ ६३ ॥ सहस्रधारामारभ्य योजनं पूर्वतो दिशि ॥ तथैव दिक्प्रतीच्यां वै योजनं समतोवधिः ॥ ६४ ॥ दक्षिणोत्तरभागे तु सरयूतमसावधिः ॥ एतत्क्षेत्रस्य संस्थानं हरेरन्तर्गृहं स्थितम् ॥ मत्स्याकृतिरियं विप्र पुरी विष्णोरुदीरिता ॥ ६५ ॥ पश्चिमे तस्य मूर्धा तु गोप्रतारासिताद्द्विज ॥ ६६ ॥ पूर्वतः पृष्ठभागो हि दक्षिणोत्तरमध्यमः ॥ तस्यां पुर्यां महाभाग नाम्ना विष्णुर्हरिः स्वयम् ॥ पूर्वं दृष्टप्रभावोऽसौ प्राधान्येन वसत्यपि ॥ ६७ ॥ व्यास उवाच ॥ भगवन्किंप्रभावोऽसौ योऽयं विष्णुहरि स्त्वया ॥ कीर्तितो मुनिशार्दूल प्रसिद्धिं गतवान्कथम् ॥ एतत्सर्वं समाचक्ष्व विस्तरेण ममाग्रतः ॥ ६८ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ विष्णुशर्मेति विख्यातः पुराभूद्ब्राह्मणोत्तमः ॥ वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो धर्मकर्मसमाश्रितः ॥ ६९ ॥ योगध्यान रतोनित्यं विष्णुभक्तिपरायणः ॥ स कदाचित्तीर्थयात्रां कुर्वन्वैष्णवसत्तमः ॥ अयोध्यामागतो विष्णुर्विष्णुः साक्षात्

प्रभाववाले ये मुख्यता से बसते भी हैं ॥ ६७ ॥ व्यासजी बोले कि हे मुनिशार्दूल, भगवन् ! इनका क्या प्रभाव है जो ये विष्णुजी तुमसे कहेगये और कैसे ये प्रसिद्धि को प्राप्त हुए यह सब विस्तार से मेरे आगे कहिये ॥ ६८ ॥ अगस्त्यजी बोले कि पुरातन समय विष्णुशर्मा ऐसा प्रसिद्ध उत्तम ब्राह्मण वेद, वेदाङ्गों के तत्त्वों को जाननेवाला व धर्म, कर्ममें परायण हुआ है ॥ ६९ ॥ योग, ध्यानमें सदैव परायण वह विष्णुजी की भक्ति में तत्पर था वह उत्तम वैष्णव किसी समय

आनन्दसे हृदयमें हर्ष होता है ॥ ५४ ॥ अगस्त्यजी बोले कि हे तपोधन, मुनिसत्तम ! अयोध्या का माहात्म्य देखकर इस समय मेरे बड़ा आश्चर्य व विस्मय हुआ ॥ ५५ ॥ इसलिये इस समय मेरे आनन्दसमुदाय हुआ है वह अगस्त्यजी का वचन सुनकर व्यासजी ने उन अगस्त्यमुनि से कहा ॥ ५६ ॥ (व्यासजी बोले) कि हे भगवन् ! अयोध्या महापुरी की अधिकगुणवाली महिमा को रहस्य समेत विस्तार से यथार्थ कहिये ॥ ५७ ॥ हे वदतांवर, महामुने ! तीर्थयात्रा का कौन क्रम है और कौन तीर्थ व कौन विधि है और वहां स्नान व दानका क्या फल है यह सब विस्तार से कहिये ॥ ५८ ॥ अगस्त्यजी बोले कि हे तपोधन ! तुम्हारी

नन्दात्प्रमोदो हृदि जायते ॥ ५४ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ अहो महदथाश्चर्यं विस्मयो मुनिसत्तम ॥ दृष्ट्वा प्रभावं मेऽद्याभूदयोध्यायास्तपोधन ॥ ५५ ॥ तस्मादानन्दसंदोहः समभून्मम सांप्रतम् ॥ तच्छ्रुत्वागस्त्यवचनं व्यासः प्रोवाच तं मुनिम् ॥ ५६ ॥ व्यास उवाच ॥ भगवन्ब्रूहि तत्त्वेन विस्तरात्सरहस्यकम् ॥ अयोध्याया महापुर्या महिमानं गुणाधिकम् ॥ ५७ ॥ कः क्रमस्तीर्थयात्रायाः कानि तीर्थानि को विधिः ॥ किं फलं स्नानतस्तत्र दानस्य च महामुने ॥ एतत्सर्वं समाचक्ष्व विस्तराद्वदतां वर ॥ ५८ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ अहो धन्यतमा बुद्धिस्तव जाता तपोधन ॥ दृश्यते येन पृच्छा ते ह्ययोध्यामहिमाश्रिता ॥ ५९ ॥ अकारो ब्रह्म च प्रोक्तं यकारो विष्णुरुच्यते ॥ धकारो रुद्ररूपश्च अयोध्यानाम राजते ॥ ६० ॥ सर्वोपपातकैर्युक्तैर्ब्रह्महत्यादिपातकैः ॥ नायोध्या शक्यते यस्मात्तामयोध्यां ततो विदुः ॥ ६१ ॥ विष्णोराद्या पुरी येयं क्षितिं न स्पृशति द्विज ॥ विष्णोः सुदर्शने चक्रे स्थिता पुण्यकरी क्षितौ ॥ ६२ ॥

बुद्धि बहुत प्रशंसनीय देख पड़ती है जिससे तुम अयोध्या की महिमा पूछते हो ॥ ५९ ॥ अकार ब्रह्म है व यकार विष्णु कहाजाता है और धकार रुद्ररूप है इससे अयोध्या नाम शोभित है ॥ ६० ॥ जिससे सब उपपातक व ब्रह्महत्यादिक पापों से अयोध्या नहीं युक्त होसक्ती है इसलिये महर्षियों ने उसको अयोध्या कहा है ॥ ६१ ॥ हे द्विज ! जो यह विष्णुजी की आदिपुरी पृथ्वीको स्पर्श नहीं करती है व पृथ्वीमें पवित्रकारिणी जो विष्णु के सुदर्शनचक्र में स्थित है ॥ ६२ ॥

के अंगूठे से गङ्गाजी निकली हैं व बायें अंगूठे से उत्तम सरयूजी निकली हैं ॥ ४५ ॥ इस कारण देवताओं से प्रणाम की हुई ये नदियां अतिपवित्र हैं इनमें स्नान ही से मनुष्य ब्रह्महत्या को नाश करता है ॥ ४६ ॥ स्वामिकार्त्तिकेयजी के प्रसाद से तीर्थ का माहात्म्य जानकर कुम्भज अगस्त्यमुनि यात्रा के लिये उस अयोध्या पुरी में प्राप्त हुए ॥ ४७ ॥ वे मुनि आकर फिर क्रमसे यात्रा करके यथोक्तविधि से नहाकर व उन पितरों को तर्पण करके ॥ ४८ ॥ यथायोग्य सब देवताओं को पूजकर विधिपूर्वक सब तीर्थों को भी प्रणाम करके ॥ ४९ ॥ तीर्थमाहात्म्य के दर्शन से वे अगस्त्यजी कृतार्थ व अतिप्रसन्न हुए और रूप से रोमाञ्चित

वामांगुष्ठान्मुनिवराः सरयूर्निर्गता शुभा ॥ ४५ ॥ तस्मादिमे पुण्यतमे नद्यौ देवनमस्कृते ॥ एतयोः स्नानमात्रेण ब्रह्म हत्यां व्यपोहति ॥ ४६ ॥ तामयोध्यामथ प्राप्तोऽगस्त्यः कुम्भोद्भवो मुनिः ॥ यात्रार्थं तीर्थमाहात्म्यं ज्ञात्वा स्कन्द प्रसादतः ॥ ४७ ॥ आगत्य तु पुनः सोऽपि कृत्वा यात्रां क्रमेण च ॥ यथोक्तेन विधानेन स्नात्वा संतर्प्य तान् पितॄन् ॥ ४८ ॥ पूजयित्वा यथान्यायं देवताः सकला अपि ॥ सर्वाण्यपि च तीर्थानि नमस्कृत्य यथाविधि ॥ ४९ ॥ कृत कृत्योर्जितानन्दस्तीर्थमाहात्म्यदर्शनात् ॥ अभूदगस्त्यो रूपेण पुलकाञ्चितविग्रहः ॥ ५० ॥ स त्रिरात्रं स्थितस्तत्र यात्रां कृत्वा यथाविधि ॥ स्तुवन्नयोध्यामाहात्म्यं प्रतस्थे मुनिसत्तमः ॥ ५१ ॥ तमायान्तं विलोक्याशु बहुलानन्दसु न्दरम् ॥ कृष्णद्वैपायनो व्यासः पप्रच्छानन्दकारणम् ॥ ५२ ॥ व्यास उवाच ॥ कुतः समागतो ब्रह्मन्सांप्रतं मुनिस त्तमः ॥ परमानन्दसंदोहः समभूत्सांप्रतं तव ॥ ५३ ॥ कस्मादानन्दपोषोऽभूत्तव ब्रह्मन्वदस्व मे ॥ ममापि भवदा

शरीर हुए ॥ ५० ॥ और वे मुनि विधिपूर्वक यात्रा करके वहां तीनरात्रितक स्थित रहे और अयोध्यामाहात्म्य की प्रशंसा करते हुए वे श्रेष्ठमुनि चले ॥ ५१ ॥ आते हुए उन मुनि को बहुत आनन्दसे सुन्दर देखकर कृष्णद्वैपायनव्यासजी ने शीघ्र आनन्दका कारण पूछा ॥ ५२ ॥ (व्यासजी बोले) कि हे ब्रह्मन् ! इस समय मुनि-श्रेष्ठ तुम कहां से आते हो जो कि तुम्हारे इस समय परम आनन्द का समूह है ॥ ५३ ॥ हे ब्रह्मन् ! तुम्हारे किस कारण आनन्दका पोष हुआ और मेरे भी आपके

शब्दों से उन्नति को प्राप्त है और साखू, ताल, नारियल, कटहल व आमलों से संयुत है ॥ ३५ ॥ व आम, कपित्थ तथा अशोक वृक्षों से शोभित और सब ऋतुवों में फलवान् वृक्षोंवाले अनेक भांति के बगीचों से संयुत है ॥ ३६ ॥ व चमेली, बकुल, पाड़र, नागकेसर, चम्पक, कनैर, कर्णिकार व केतकी वृक्षों से शोभित है ॥ ३७ ॥ व नीम, निम्बू, केला, मातुलिङ्ग, महाफल व शोभित चन्दन सुगन्धों से संयुत नागरों से शोभित है ॥ ३८ ॥ व देवताओं के समान प्रभासंयुत राजपुत्रों से संयुत है और सुन्दररूपवाली उत्तम देवनारियों से युक्त है ॥ ३९ ॥ व श्रेष्ठ उत्तम कवियों व बृहस्पति के समान ब्राह्मणों से युक्त

शब्दैरुत्कृष्टतां गता ॥ शालैस्तालैर्नालिकेरैः पनसामलकैस्तथा ॥ ३५ ॥ तथैवाम्रकपित्थाद्यैरशोकैरुपशोभिता ॥ आरामैर्विविधैर्युक्ता सर्वर्तुफलपादपैः ॥ ३६ ॥ मालतीजातिबकुलपाटलीनागचम्पकैः ॥ करवीरैः कर्णिकारैः केतकीभिरलंकृता ॥ ३७ ॥ निम्बजम्बीरकदलीमातुलिङ्गमहाफलैः ॥ लसच्चन्दनगन्धाढ्यैर्नागरैरुपशोभिता ॥ ३८ ॥ देवतुल्यप्रभायुक्तैर्नृपपुत्रैश्च संयुता ॥ सुरूपाभिर्वरस्त्रीभिर्देवस्त्रीभिरिवावृता ॥ ३९ ॥ श्रेष्ठैः सत्कविभिर्युक्ता बृहस्पतिसमैर्द्विजैः ॥ वणिग्जनैस्तथा पौरैः कल्पवृक्षैरिवावृता ॥ ४० ॥ अश्वैरुच्चैःश्रवस्तुल्यैर्दन्तिभिर्दिग्गजैरिव ॥ इति नानाविधैर्भावैरुपेतेन्द्रपुरीसमा ॥ ४१ ॥ यस्यां जाता महीपालाः सूर्यवंशसमुद्भवाः ॥ इक्ष्वाकुप्रमुखाः सर्वे प्रजापालनतत्पराः ॥४२॥ यस्यास्तीरे पुण्यतोया कूजद्भृङ्गविहङ्गमा ॥ सरयूर्नाम तटिनी मानसप्रभवोल्लसा ॥४३॥ घर्मद्रवपरीता सा घर्घरोत्तमसङ्गमा ॥ मुनीश्वराश्रिततटा जागर्ति जगदुच्छ्रिता ॥ ४४ ॥ दक्षिणाच्चरणाङ्गुष्ठान्निःसृता जाह्नवी हरेः ॥

है और कल्पवृक्षों के समान वैश्यजन व पुरवासियों से संयुत है ॥ ४० ॥ व उच्चैःश्रवा के समान अश्व व दिग्गजों के समान हाथियों से युक्त है इस प्रकार नाना भांति के भावों से संयुत इन्द्रपुरी के समान है ॥ ४१ ॥ जिस पुरी में सूर्यवंश में उत्पन्न इक्ष्वाकु आदिक राजा सब प्रजापालन में परायण हैं ॥ ४२ ॥ जिसके किनारे कूजित भृङ्ग व विहङ्ग तथा पुण्यजलवाली सरयूनामक नदी मानसतड़ाग में उत्पन्न होनेवाली वस्तुवों से शोभित है ॥ ४३ ॥ उत्तम घर्घरशब्द से समागमवाली वह धर्मद्रव से संयुत है व संसार में ऊंची तथा मुनीश्वरों से आश्रित तटवाली वह जागती है ॥ ४४ ॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! विष्णुजी के दाहिने चरण

गरुड़वाहन विष्णुजी प्रकट हुए ॥ ८८ ॥ शंख, चक्र व गदाको हाथ में लिये पीताम्बरधारी, अव्यय वे प्रसन्नचित्त विष्णुजी विष्णुशर्मा से बोले ॥ ८९ ॥ (श्रीभगवान् बोले) कि हे वत्स ! इस समय आपके बड़े तपसे मैं प्रसन्न हूं हे सुमते ! इस स्तोत्र से तुम इस समय पापरहित होगये ॥ ९० ॥ हे द्विजेन्द्र ! वरदान मांगिये तुम्हारे आगे मैं वरदायक प्राप्त हूं हे द्विज ! बिन तपवाला कोई पुरुष मुझको नहीं देख सक्ता है ॥ ९१ ॥ विष्णुशर्मा बोले कि हे देवेश ! इस समय तुम्हारे दर्शन से मैं कृतार्थ होगया हे जगत्पते ! आप एक अपनी अचल भक्तिको मुझे दीजिये ॥ ९२ ॥ श्रीभगवान् बोले कि मुक्तिको देनेवाली मेरी अचल

र्बभूव विश्वात्मा विष्णुर्गरुडवाहनः ॥ ८८ ॥ शंखचक्रगदापाणिः पीताम्बरधरोऽच्युतः ॥ उवाच स प्रसन्नात्मा विष्णुशर्माणमव्ययः ॥ ८९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ तुष्टोऽस्मि भवतो वत्स महता तपसाधुना ॥ स्तोत्रेणानेन सुमते नष्टपापोऽसि सांप्रतम् ॥ ९० ॥ वरं वरय विप्रेन्द्र वरदोऽहं तवाग्रतः ॥ नातप्ततपसा द्रष्टुं शक्यः केनाप्यहं द्विज ॥ ९१ ॥ विष्णुशर्मोवाच ॥ कृतकृत्योऽस्मि देवेश सांप्रतं तव दर्शनात् ॥ त्वद्भक्तिमचलामेकां मम देहि जगत्पते ॥ ९२ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ भक्तिरस्त्वचला मे वै वैष्णवी मुक्तिदायिनी ॥ अत्रैवास्त्वचला मे वै जाह्नवी मुक्तिदायिनी ॥ ९३ ॥ इदं स्थानं महाभाग त्वन्नाम्ना ख्यातिमेष्यति ॥ ९४ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ इत्युक्त्वा देवदेवेशश्चक्रेणोत्खाय तत्स्थलम् ॥ जलं प्रकटयामास गाङ्गं पातालमण्डलात् ॥ ९५ ॥ जलेन तेन भगवान्पवित्रेण दयाम्बुधिः ॥ नीरजस्कं भूमितलं क्षणाच्चक्रे कृपावशात् ॥ ९६ ॥ चक्रतीर्थमिति ख्यातं ततः प्रभृति तद्द्विज ॥ जातं त्रैलोक्यविख्यातमघौ

वैष्णवीभक्ति तुम्हारे होवै और यहीं पर मुक्तिदायिनी गङ्गाजी अचल होवैं ॥ ९३ ॥ हे महाभाग ! तुम्हारे नाम से यह स्थान प्रसिद्ध होगा ॥ ९४ ॥ अगस्त्यजी बोले कि यह कहकर देवदेवेश विष्णुजी ने चक्र से उस स्थल को खोदकर पातालमण्डल से गङ्गाजी का जल प्रकट किया ॥ ९५ ॥ दयासागर भगवान् विष्णुजी ने दयावश से क्षणभर में उस पवित्रजल से पृथ्वीतल को नीरज किया ॥ ९६ ॥ हे द्विज ! तब से लगाकर वह चक्रतीर्थ ऐसा उत्तम विख्यात तीर्थ पापसमूह

का नाशक त्रिलोक में प्रसिद्ध हुआ ॥ ९७ ॥ उसमें स्नान व दान से मनुष्य विष्णुलोक को जाता है ॥ ९८ ॥ तदनन्तर बड़ी दया से संयुत द्विजप्रिय विष्णुजी ने फिर विष्णुशर्मा से कहा ॥ ९९ ॥ (श्रीविष्णुजी बोले) कि हे विप्र! तुम्हारे नामपूर्वक मेरी मूर्ति यहां स्थित होवै भक्तों को मुक्तिदायिनी विष्णुहरि ऐसी प्रसिद्ध होवै ॥ १०० ॥ अगस्त्यजी बोले कि विष्णुजी का यह वचन सुनकर बुद्धिमान् ब्राह्मण ने अपने नामपूर्वक विष्णुकी मूर्तिको स्थापन किया ॥ १ ॥ तब से लगाकर हे देवेश! शंख, चक्र, गदाधारी पीतवसनवाले चतुर्भुज विष्णुजी विष्णुहरि नाम से स्थित हुए ॥ २ ॥ कार्त्तिक में शुक्लपक्ष की दशमी तिथि को

घध्वंसकृच्छुभम् ॥ ९७ ॥ तत्र स्नानेन दानेन विष्णुलोकं व्रजेन्नरः ॥ ९८ ॥ ततः स भगवान्भूयो विष्णुशर्माण मच्युतः ॥ कृपया परया युक्त उवाच द्विजवत्सलः ॥ ९९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ त्वन्नामपूर्विका विप्र मन्मूर्तिरिह तिष्ठतु ॥ विष्णुहरीति विख्याता भक्तानां मुक्तिदायिनी ॥ १०० ॥ अगस्त्य उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचो विप्रो वासुदेवस्य बुद्धिमान् ॥ स्वनामपूर्विकां मूर्तिं स्थापयामास चक्रिणः ॥ १ ॥ ततः प्रभृति विप्रेश शंखचक्रगदाधरः ॥ पीत वासाश्चतुर्बाहुर्नाम्ना विष्णुहरिः स्थितः ॥ २ ॥ कार्त्तिके शुक्लपक्षस्य प्रारभ्य दशमीतिथिम् ॥ पूर्णिमामवधिं कृत्वा यात्रा सांवत्सरी भवेत् ॥ ३ ॥ चक्रतीर्थे नरः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ बहुवर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥ ४ ॥ पितॄनुद्दिश्य यस्तत्र पिण्डान्निर्वापयिष्यति ॥ तृप्तास्तु पितरो यान्ति विष्णुलोकं न संशयः ॥ ५ ॥ चक्रतीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा विष्णुहरिं विभुम् ॥ सर्वपापक्षयं प्राप्य नाकपृष्ठे महीयते ॥ ६ ॥ स्वशक्त्या तत्र दानानि दत्त्वा

प्रारम्भ करके पौर्णमासी की अवधि करके संवत्सर की यात्रा होती है ॥ ३ ॥ चक्रतीर्थ में नहाकर मनुष्य सब पापों से छूट जाता है और बहुत हज़ार वर्षों तक स्वर्ग में पूजा जाता है ॥ ४ ॥ जो वहां पितरों को उद्देशकर पिण्डदान करैगा उसके पितर तृप्त होकर विष्णुलोक को जावैंगे इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५ ॥ चक्रतीर्थ में मनुष्य नहाकर विष्णुहरि विभु को देखकर समस्त पातकों की हानि को पाकर स्वर्ग में पूजा जाता है ॥ ६ ॥ और अपनी शक्ति के अनुसार वहां दान देकर

पापरहित बुद्धिमान् मनुष्य चौदह इन्द्रपर्यन्त विष्णुलोक में बसता है ॥ ७ ॥ अन्य समय में भी जितेन्द्रिय मनुष्य उस चक्रतीर्थ में विष्णुदेव को एक बार देख कर सब पापोंसे छूट जाता है ॥ ८ ॥ इस प्रकार समस्त गुणों के समुद्र चैतन्यात्मा विष्णुजी यहां मुक्ति के कारण उत्तम मूर्ति से स्थित हुए उनको यहां चक्रतीर्थ में स्नान करनेवाला जो मनुष्य बड़ी भक्ति से पूजता है वह पुण्यमूर्ति मनुष्य विष्णुलोक में बसता है ॥ १०९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतश्री-अयोध्यामाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे विष्णुहरिमाहात्म्यवर्णनंनाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

निष्कल्मषो नरः ॥ विष्णुलोके वसेद्धीमान्यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ ७ ॥ अन्यदापि नरस्तत्र चक्रतीर्थे जितेन्द्रियः ॥ दृष्ट्वा सकृद्धरिं देवं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ८ ॥ इति सकलगुणाब्धिर्ध्येयमूर्तिश्चिदात्मा हरिरिह परमूर्त्या तस्थिवान्मुक्तिहेतोः ॥ तमिह बहुलभक्त्या चक्रतीर्थाभिषेकी वसति सुकृतिमूर्तिर्योऽर्चयेद्विष्णुलोके ॥ १०९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतश्रीअयोध्यामाहात्म्ये विष्णुहरिमाहात्म्यवर्णनंनाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ * ॥

सूत उवाच ॥ अगस्त्यमुनिरित्युक्त्वा चक्रतीर्थाश्रयां कथाम् ॥ विभोर्विष्णुहरेश्चापि पुनराह द्विजोत्तमाः ॥ १ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ पुरा ब्रह्मा जगत्स्रष्टा विज्ञाय हरिमच्युतम् ॥ अयोध्यावासिनं देवं तत्र चक्रे स्थितिं स्वयम् ॥ २ ॥ आगत्य कृतवांस्तत्र यात्रां ब्रह्मा यथाविधि ॥ यज्ञं च विधिवच्चक्रे नानासंभारसंयुतम् ॥ ३ ॥ ततः स कृतवांस्तत्र ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ कुण्डं स्वनाम्ना विपुलं नानादेवसमन्वितम् ॥ ४ ॥ विस्तीर्णजलकल्लोलकलितं कलुषाप

दो० । सहस धार इमि तीर्थ कर हैं जिमि सुखद प्रभाव । सो दूजे अध्याय में वर्णित चरित सुहाव ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! अगस्त्य मुनि इस प्रकार चक्रतीर्थ के आश्रय व व्यापक विष्णु की भी कथा कहकर फिर बोले ॥ १ ॥ (अगस्त्यजी बोले) कि पुरातन समय संसार को रचनेवाले ब्रह्माजीने अयोध्यावासी देव को अच्युत विष्णु जानकर आपही वहां स्थिति किया ॥ २ ॥ ब्रह्मा ने वहां आकर विधिपूर्वक यात्रा करके अनेक प्रकार के संभार से संयुत विधिपूर्वक यज्ञ किया ॥ ३ ॥ तदनन्तर लोकों के पितामह उन ब्रह्माजी ने वहां अपने नाम से अनेक देवताओं से संयुत बड़ाभारी कुण्ड किया ॥ ४ ॥ जो कि बहुत जल की

लहरियों से शोभित व पापनाशक तथा कुमुद, उत्पल, कह्लार व पुण्डरीक कमलों से संयुत था ॥ ५ ॥ व हंस, सारस और चक्रवाक पक्षियों से संयुत तथा किनारेवाले वृक्षों में आनन्दित पक्षिगणों से संयुत था ॥ ६ ॥ उस कुण्ड में नहाकर पवित्रतासंयुत सब देवता निर्मल व विमलकान्ति संयुत हुए ॥ ७ ॥ वह बड़ाभारी आश्चर्य देखकर उस समय वे सब देवता हाथों को जोड़कर भक्ति से यह बोले ॥ ८ ॥ (देवता बोले) कि हे कमलासन, भगवन् ! निर्मल कान्तिवाले इस खातकुण्ड का समस्त माहात्म्य यथार्थ कहिये ॥ ९ ॥ हे सुरश्रेष्ठ ! इसमें स्नान करने से हम सबों की मलिनता जाती रही हम सब इस कुण्ड का बड़ा

हम् ॥ कुमुदोत्पलकह्लारपुण्डरीककुलाकुलम् ॥ ५ ॥ हंससारसचक्राह्वविहङ्गममनोहरम् ॥ तटान्तविटपोल्लासिप तत्रिगणसंकुलम् ॥ ६ ॥ तत्र कुण्डे सुराः सर्वे स्नाताः शुद्धिसमन्विताः ॥ बभूवुरद्धा विगतरजस्का विमलत्विषः ॥७॥ तदाश्चर्यं महद्दृष्ट्वा ते सर्वे सहसा सुराः ॥ ब्रह्माणं प्रणिपत्योचुर्भक्त्या प्राञ्जलयस्तदा ॥ ८ ॥ देवा ऊचुः ॥ भगवन्ब्रूहि तत्त्वेन माहात्म्यं कमलासन ॥ अस्य कुण्डस्य सकलं खातस्य विमलत्विषः ॥ ९ ॥ अत्र स्नानेन सर्वेषामस्माकं विगतं रजः ॥ महदाश्चर्यमेतस्य दृष्ट्वा कुण्डस्य विस्मिताः ॥ सर्वे वयं सुरश्रेष्ठ कृपया त्वमतो वद ॥ १० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ शृण्वन्तु सर्वे त्रिदशाः सावधानाः सविस्मयाः ॥ कुण्डस्यैतस्य माहात्म्यं नानाफलसमन्वितम् ॥ ११ ॥ अत्र स्नानेन विधिवत्पापात्मानोऽपि जन्तवः ॥ विमानं हंससंयुक्तमास्थाय रुचिराम्बराः ॥ अध्यासते ब्रह्मलोकं यावदाभूतसंप्लवम् ॥ १२ ॥ अत्र दानेन होमेन यथाशक्त्या सुरोत्तमाः ॥ तुलाश्वमेधयोः पुण्यं प्राप्नुयुर्मुनिसत्तमाः ॥ १३ ॥ ममास्मिन्सरसि श्रीमाञ्जायते स्नानतो नरः ॥ तस्मादत्र विधानेन स्नानं दानं जपा

भारी आश्चर्य देखकर विस्मित होगये इससे तुम कृपा से कहो ॥ १० ॥ ब्रह्मा बोले कि विस्मय समेत सब देवता सावधान होकर अनेक भांति के फल से संयुत इस कुण्ड का माहात्म्य सुनैं ॥ ११ ॥ कि इसमें विधिपूर्वक स्नान करने से पापी भी प्राणी हंस संयुत विमान पै बैठकर दिव्य वसनवाले वे प्रलयपर्यन्त ब्रह्मलोक में बसते हैं ॥ १२ ॥ हे सुरोत्तमो ! यहां यथाशक्ति दान व स्नान से मुनिश्रेष्ठ तुलादान व अश्वमेध यज्ञ के पुण्य को प्राप्त होते हैं ॥ १३ ॥ मेरे इस तड़ाग

में स्नान करने से मनुष्य श्रीमान् होता है इस कारण यहां विधिसे स्नान, दान व जप आदिक ॥ १४ ॥ सब यज्ञों के समान व महापातकों का नाशक है यह ब्रह्मकुण्ड ऐसी उत्तम प्रसिद्धि को प्राप्त होगा ॥ १५ ॥ और इस कुण्ड में सदैव मेरी सान्निध्य होगी हे सुरोत्तमो ! कार्त्तिक में शुक्लपक्ष की चौदसि में ॥ १६ ॥ हे देवताओ ! मेरी वर्ष भरकी सदैव यात्रा होगी जो कि उस समय शुभदायिनी और महापापराशियों को नाश करनेवाली है ॥ १७ ॥ हे देवताओ ! सदैव सुवर्ण व अनेक भांति के वस्त्रों को देना चाहिये व अपनी शक्ति के अनुसार ब्राह्मणों की तृप्ति करना चाहिये ॥ १८ ॥ अगस्त्यजी बोले कि हे तपोधन ! यह कह

दिकम् ॥ १४ ॥ सर्वयज्ञसमं स्याद्धै महापातकनाशनम् ॥ ब्रह्मकुण्डमिति ख्यातिमितो यास्यत्यनुत्तमाम् ॥ १५ ॥ अस्मिन्कुण्डे च सांनिध्यं भविष्यति सदा मम ॥ कार्त्तिके शुक्लपक्षस्य चतुर्दश्यां सुरोत्तमाः ॥ १६ ॥ यात्रा भविष्यति सदा सुराः सांवत्सरी मम ॥ शुभप्रदा महापापराशिनाशकरी तदा ॥ १७ ॥ स्वर्णं चैव सदा देयं वासांसि विविधानि च ॥ निजशक्त्या प्रकर्तव्या सुरास्तृप्तिर्द्विजन्मनाम् ॥ १८ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ इत्युक्त्वा देवदेवोऽयं ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ अन्तर्दधे सुरैः सार्धं तीर्थं दृष्ट्वा तपोधन ॥ १९ ॥ तदाप्रभृति तत्कुण्डं विख्यातं परमं भुवि ॥ चक्रतीर्थाच्च पूर्वस्यां दिशि कुण्डं स्थितं महत ॥ २० ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्त्वा स तपोराशिरगस्त्यः कुम्भसंभवः ॥ पुनः पृष्टो मुनिवरो व्यासायाब्रवीदत्कथाम् ॥ २१ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ अन्यच्छृणु महाभाग तीर्थं दुष्कृतिदुर्लभम् ॥ ऋणमोचनसंज्ञं तु सरयूतीरसंगतम् ॥ २२ ॥ ब्रह्मकुण्डान्मुनिवर धनुःसप्तशतेन च ॥ पूर्वोत्तर

कर लोकों के पितामह ये देवदेव ब्रह्माजी देवताओंसमेत तीर्थ को देखकर अन्तर्धान होगये ॥ १९ ॥ तब से लगाकर वह कुण्ड पृथ्वी में बहुत प्रसिद्ध है चक्रतीर्थ से पूर्व दिशा में बड़ाभारी कुण्ड स्थित है ॥ २० ॥ सूतजी बोले कि यह कहकर तपस्या की राशि मुनिवर कुम्भजन्मा अगस्त्यजी ने फिर पूछने पर व्यासजी से कथा कहा ॥ २१ ॥ (अगस्त्यजी बोले) कि हे महाभाग ! सरयू के किनारे प्राप्त ऋणमोचननामक पापियों को दुर्लभ अन्य तीर्थ को सुनिये ॥ २२ ॥ हे मुनिवर !

ब्रह्मकुण्ड से पूर्व व उत्तर दिशा के भाग में सात सौ धनुष पर सरयू के जल में स्थित है ॥ २३ ॥ वहां पहले लोमशनामक मुनिवर ने तीर्थयात्रा के प्रसंग से विधि से स्नान किया है ॥ २४ ॥ तदनन्तर ऋण से छूटे हुए वे पापरहित हुए और उन्होंने यह बड़ाभारी आश्चर्य देखकर आनन्दपूर्वक मुनियों से कहा ॥ २५ ॥ इस श्रेष्ठ तीर्थ के बड़ेभारी गुणों को देखिये भुजाओं को ऊपर करके आंसुवों से संयुत नेत्रोंवाले उन्होंने हर्ष से कहा ॥ २६ ॥ (लोमशजी बोले) कि यह ऋणमोचननामक तीर्थ अति उत्तम है जिसमें स्नान से प्राणियों का ऋण छूट जाता है ॥ २७ ॥ इस लोक व परलोक के जो मनुष्यों के तीन ऋण

दिशाभागे संस्थितं सरयूजले ॥ २३ ॥ तत्र पूर्वं मुनिवरो लोमशोनाम नामतः ॥ तीर्थयात्राप्रसंगेन स्नानं चक्रे विधानतः ॥ २४ ॥ ततः स ऋणनिर्मुक्तो बभूव गतकल्मषः ॥ तदाश्चर्यं महद्दृष्ट्वा मुनीन्सानन्दमब्रवीत् ॥ २५ ॥ पश्य न्त्वेतस्य महतो गुणांस्तीर्थवरस्य वै ॥ भुजावूर्ध्वं तथा कृत्वा हर्षेणाहाश्रुलोचनः ॥ २६ ॥ लोमश उवाच ॥ ऋण मोचनसंज्ञं तु तीर्थमेतदनुत्तमम् ॥ यत्र स्नानेन जन्तूनामृणनिर्यातनं भवेत् ॥ २७ ॥ ऐहिकं पारलौकिक्यं यदृणात्रि तयं नृणाम् ॥ तत्सर्वं स्नानमात्रेण तीर्थेऽस्मिन्नश्यति क्षणात् ॥ २८ ॥ सर्वतीर्थोत्तमं चैतत्सद्यः प्रत्ययकारकम् ॥ मया चास्य फलं सम्यगनुभूतमृणादिह ॥ २९ ॥ तस्मादत्र विधानेन स्नानं दानं च शक्तितः ॥ कर्तव्यं श्रद्धया युक्तैः सर्वदा फलकाङ्क्षिभिः ॥ ३० ॥ स्नातव्यं च सुवर्णं च देयं वस्त्रादि शक्तितः ॥ ३१ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ इत्युक्त्वा तीर्थमाहात्म्यं लोमशो मुनिसत्तमः ॥ अन्तर्दधे मुनिश्रेष्ठः स्तुवंस्तीर्थगुणान्मुदा ॥ ३२ ॥ इत्येतत्कथितं विप्र

हैं वे सब इस तीर्थ में स्नान से क्षणभर में नाश हो जाते हैं ॥ २८ ॥ सब तीर्थों में उत्तम यह शीघ्रही विश्वासकारक है मैंने ऋण से इसका फल भलीभांति भोग किया है ॥ २९ ॥ इसलिये श्रद्धासंयुत सदैव फलको चाहनेवाले मनुष्यों को इसमें शक्ति के अनुसार स्नान व दान करना चाहिये ॥ ३० ॥ स्नान व शक्ति के अनुसार सुवर्ण तथा वस्त्रादि देना चाहिये ॥ ३१ ॥ अगस्त्यजी बोले कि इस प्रकार तीर्थ का माहात्म्य कहकर मुनिश्रेष्ठ लोमशजी हर्ष से तीर्थगुणों की प्रशंसा करते हुए अन्तर्धान हो गये ॥ ३२ ॥ हे विप्र ! यह ऋणमोचननामक तीर्थ कहा गया जिसमें स्नान से मनुष्यों का ऋण उसी क्षण नाश हो जाता है

सरयूजल में पूर्व ओर ऋणमोचन नामक तीर्थ है ॥ ३३ ॥ दोसौ धनुष पर जो पापमोचन नामक तीर्थ है उसमें नहाने से मनुष्य उसी क्षण सब पापों से शुद्ध-चित्त होता है इसमें विचार करना न चाहिये ॥ ३४ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! मैंने वहां उत्तम माहात्म्य देखा है ॥ ३५ ॥ कि पांचाल देश में उत्पन्न नरहरि नामक ब्राह्मण दुष्ट संग के प्रभाव से पापचित्त हुआ है ॥ ३६ ॥ पापियों के संग से वेदत्रयी के मार्ग की निन्दा करनेवाले उसने ब्रह्महत्यादिक अनेक भांति के पाप किये ॥ ३७ ॥ हे विप्र ! किसी समय तीर्थयात्रा के प्रसंग से वह महापापकारी ब्राह्मण साधुवों के संग से अयोध्या को आया ॥ ३८ ॥ और सत्संग से वह ब्राह्मण

ऋणमोचनसंज्ञकम् ॥ यत्र स्नानेन जन्तूनामृणं नश्यति तत्क्षणात् ॥ ऋणमोचनतीर्थं तु पूर्वतः सरयूजले ॥ ३३ ॥ धनुर्द्विशत्या तीर्थं च पापमोचनसंज्ञकम् ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा तत्र स्नानेन मानवः ॥ जायते तत्क्षणादेव नात्र कार्या विचारणा ॥ ३४ ॥ मया तत्र मुनिश्रेष्ठ दृष्टं माहात्म्यमुत्तमम् ॥ ३५ ॥ पाञ्चालदेशसंभूतो नाम्ना नरहरि द्विजः ॥ असत्संगप्रभावेण पापात्मा समजायत ॥ ३६ ॥ नानाविधानि पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च ॥ कृतवान्पापि संगेन त्रयीमार्गविनिन्दकः ॥ ३७ ॥ स कदाचित्साधुसंगात्तीर्थयात्राप्रसंगतः ॥ अयोध्यामागतो विप्र महापातक कृद्द्विजः ॥ ३८ ॥ पापमोचनतीर्थे तु स्नातः सत्संगतो द्विजः ॥ पापराशिर्विनष्टोऽस्य निष्पापः समभूत्क्षणात् ॥ ३९ ॥ दिवः पपात तन्मूर्ध्नि पुष्पवृष्टिर्मुनीश्वर ॥ दिव्यं विमानमारुह्य विष्णुलोके गतो द्विजः ॥ ४० ॥ तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं मया च द्विजपुङ्गव ॥ श्रद्धया परया तत्र कृतं स्नानं विशेषतः ॥ ४१ ॥ माघकृष्णचतुर्दश्यां तत्र स्नानं विशेषतः ॥

पापमोचन तीर्थ में नहाया तब इसका पापसमुदाय नाश हो गया व क्षणभर में यह पापरहित होगया ॥ ३९ ॥ व हे मुनीश्वर ! उसके मस्तक पै आकाश से पुष्पवृष्टि हुई और दिव्य विमान पै चढ़कर वह ब्राह्मण विष्णुलोक में गया ॥ ४० ॥ हे द्विजोत्तम ! मैंने उस बड़ेभारी आश्चर्य को देखकर उसमें बड़ी श्रद्धा से विशेष कर स्नान किया ॥ ४१ ॥ मनुष्यों को सब पापों की शुद्धि के लिये माघ के कृष्णपक्ष की चौदसि में उसमें विशेष कर स्नान व दान करना

चाहिये ॥ ४२ ॥ और अन्य समय में भी स्नान करने पर सब पापों का नाश होता है ॥ ४३ ॥ सरयूजल में पूर्व और पापमोचन तीर्थ में सौ धनुष की प्रमाण से उत्तम तीर्थ है ॥ ४४ ॥ सब पापों का नाशक वह सहस्रधारासंज्ञक तीर्थ है जिसमें शत्रुवीरनाशक लक्ष्मणवीरजी श्रीरामजी की आज्ञा से प्राणों को छोड़कर पुरातन समय शेष शरीर को प्राप्त हुए हैं ॥ ४५ ॥ साढ़े तीन हाथ धनुष का प्रमाण कहा गया है और चार हाथ से दण्डसंख्या कही जाती है ॥ ४६ ॥ सूतजी बोले कि इस प्रकार उस समय अगस्त्य मुनि से सुनकर फिर कृष्णद्वैपायनव्यासजीने कौतुक से पूछा ॥ ४७ ॥ (व्यासजी बोले) कि हे सुव्रत ! सहस्रधारा का माहात्म्य

दानं च मनुजैः कार्यं सर्वपापविशुद्धये ॥ ४२ ॥ अन्यदा तु कृते स्नाने सर्वपापक्षयो भवेत् ॥ ४३ ॥ पापमोचनतीर्थे तु पूर्वे तु सरयूजले ॥ धनुःशतप्रमाणेन वर्तते तीर्थमुत्तमम् ॥ ४४ ॥ सहस्रधारासंज्ञं तु सर्वकिल्बिषनाशनम् ॥ यस्मि न्रामाज्ञया वीरो लक्ष्मणः परवीरहा ॥ प्राणानुत्सृज्य योगेन ययौ शेषात्मतां पुरा ॥ ४५ ॥ सार्द्धं हस्तत्रयेणैव प्रमाणं धनुषो विदुः ॥ चतुर्भिर्हस्तकैः संख्या दण्ड इत्यभिधीयते ॥ ४६ ॥ सूत उवाच ॥ इत्थं तदा समाकर्ण्य कुम्भयो निमुनेस्तदा ॥ कृष्णद्वैपायनो व्यासः पुनः पप्रच्छ कौतुकात् ॥ ४७ ॥ व्यास उवाच ॥ सहस्रधारामाहात्म्यं विस्तराद्वद सुव्रत ॥ शृण्वंस्तीर्थस्य माहात्म्यं न तृप्यति मनो मम ॥ ४८ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ सावधानः शृणु मुने कथां कथ यतो मम ॥ सहस्रधारातीर्थस्य समुत्पत्तिं महोदयात् ॥ ४९ ॥ पुरा रामो रघुपतिर्देवकार्यं विधाय वै ॥ कालेन सह संगम्य मन्त्रं चक्रे नरेश्वरः ॥ ५० ॥ आवां मन्त्रयमाणौ हि यः पश्येदन्तिकागतः ॥ मया त्याज्यो भवेत्क्षिप्रमित्थं चक्रे ससंविदम् ॥ ५१ ॥ तस्मिन्मन्त्रयमाणे हि द्वारे तिष्ठति लक्ष्मणे ॥ आगतः स तपोराशिर्दुर्वासास्तेजसां

विस्तार से कहिये तीर्थ का माहात्म्य सुनते हुए मेरा मन तृप्त नहीं होता है ॥ ४८ ॥ अगस्त्यजी बोले कि हे मुने ! सावधान होकर कथा को कहते हुए मुझसे महोदय से सहस्रधारा तीर्थ की उत्पत्ति को सुनिये ॥ ४९ ॥ पुरातन समय नरराज रघुनाथजीने देवकार्य करके काल के साथ मिलकर सम्मति किया ॥ ५० ॥ कि सम्मति करते हुए हम तुम दोनों को समीप में आकर जो देखैगा वह शीघ्रही मुझसे छोड़ने योग्य होगा इस प्रकार उन्होंने प्रतिज्ञा किया ॥ ५१ ॥ उनके सम्मति

करने पर जब द्वार पै लक्ष्मणजी खड़े थे तब तेजों के निधान वे तपोराशि दुर्वासाजी आगये ॥ ५२ ॥ क्षुधा से विकल दुर्वासाजी आकर शीघ्रही लक्ष्मणजी से प्रसन्नता से बोले ॥ ५३ ॥ (दुर्वासाजी बोले) कि हे सौमित्रे ! तुम शीघ्रही जावो और रामजी के आगे कार्य के अर्थी मुझको बतलावो इस वाक्य को अन्यथा नहीं करने योग्य हो ॥ ५४ ॥ अगस्त्यजी बोले कि शाप से डरकर उन लक्ष्मणजी ने उनके आगे शीघ्रही जाकर दर्शनाभिलाषी अत्रिपुत्र तपोराशि दुर्वासाजी को आये हुए श्रीरामजी के आगे निवेदन किया ॥ ५५ ॥ श्रीप्रभु रामचन्द्रजी भी काल से पूछकर व उसको पठाकर बाहर गये और उन मुनि को देख प्रणाम कर

निधिः ॥ ५२ ॥ आगत्य लक्ष्मणं शीघ्रं प्रीत्योवाच क्षुधाऽऽकुलः ॥ ५३ ॥ दुर्वासा उवाच ॥ सौमित्रे गच्छ शीघ्रं त्वं रामाग्रे मां निवेदय ॥ कार्यार्थिनमिदं वाक्यं नान्यथा कर्तुमर्हसि ॥ ५४ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ शापाद्भीतः स सौमित्रिर्द्रुतं गत्वा तयोः पुरः ॥ मुनिं निवेदयामास रामाग्रे दर्शनार्थिनम् ॥ दुर्वाससं तपोराशिमत्रिनन्दनमागतम् ॥ ५५ ॥ रामोऽपि कालमामन्त्र्य प्रस्थाप्य च बहिर्ययौ ॥ दृष्ट्वा मुनिं तं प्रणतः संभोज्य प्रभुरादरात् ॥ ५६ ॥ दुर्वाससं मुनिवरं प्रस्थाप्य स्वयमादरात् ॥ सत्यभङ्गभयाद्वीरो लक्ष्मणं त्यक्तवांस्तदा ॥ ५७ ॥ लक्ष्मणोऽपि तदा वीरः कुर्वन्नवितथं वचः ॥ भ्रातुर्ज्येष्ठस्य सुमतिः सरयूतीरमाययौ ॥ ५८ ॥ तत्र गत्वाथ च स्नात्वा ध्यानमास्थाय सत्वरम् ॥ चिदात्मनि मनः शान्तं संगम्यावस्थितस्तदा ॥ ५९ ॥ ततः प्रादुरभूत्तत्र सहस्रफणमण्डितः ॥ शेषश्चक्षुःश्रवाः श्रेष्ठः क्षितिं भित्त्वा सहस्रधा ॥ सुरलोकात्सुरेन्द्रोऽपि समागादमरैः सह ॥ ६० ॥ ततः शेषात्मतां यातं लक्ष्मणं सत्यसंगरम् ॥

आदर से भोजन कराकर ॥ ५६ ॥ मुनिश्रेष्ठ दुर्वासाजी को आपही आदर से पठाकर सत्यभंग के भयसे उस समय श्रीरामवीरजीने लक्ष्मणको त्याग किया ॥ ५७ ॥ तब बड़ेभाई का वचन सत्य करते हुए सुबुद्धि लक्ष्मणवीर भी सरयू के किनारे आये ॥ ५८ ॥ वहां जाकर नहाकर व ध्यान में स्थित होकर शीघ्रही चैतन्य आत्मा में शान्त मन को लगाकर उस समय स्थित हुए ॥ ५९ ॥ तदनन्तर हज़ार फणाओं से भूषित शेषनागजी पृथ्वी को हज़ार खण्ड भेदन कर वहां प्रकट हुए और स्वर्गलोक से देवताओं समेत इन्द्रभी आगये ॥ ६० ॥ तदनन्तर शेषात्मता को प्राप्त सत्यप्रतिज्ञावाले लक्ष्मणजी से इन्द्रजी ने वहां देवताओं के देखते

हुए मधुर वचन कहा ॥ ६१ ॥ (इन्द्रजी बोले) कि हे लक्ष्मण ! तुम शीघ्रही उठो और अपने उत्तम स्थान पर आरूढ़ होवो हे रिपुनिषूदन, वीर ! तुमने देवकार्य किया ॥ ६२ ॥ तुम विष्णुजी के सनातन उत्तम स्थान को प्राप्त होवो शोभित फणाओंवाले आप की मूर्ति शेष भी आगये ॥ ६३ ॥ जिस कारण हज़ार फणा मण्डलों से पृथ्वी को हज़ार खण्ड भेदन करके पृथ्वी के हज़ारों छिद्रों में भेदन कर निकले ॥ ६४ ॥ व हे सुव्रत ! शेषजी के सहस्र फण मणियों से दग्ध होगये इसलिये यह सरयू के किनारे प्राप्त सहस्रधारा ऐसा महातीर्थ प्रसिद्ध होगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६५ ॥ इस क्षेत्र का प्रमाण पचीस धनुष है श्रद्धासंयुत मनुष्य

उवाच मधुरं शक्रः सुराणां तत्र पश्यताम् ॥ ६१ ॥ इन्द्र उवाच ॥ लक्ष्मणोत्तिष्ठ शीघ्रं त्वमारोह स्वपदं स्वकम् ॥ देवकार्यं कृतं वीर त्वया रिपुनिषूदन ॥ ६२ ॥ वैष्णवं परमं स्थानं प्राप्नुहि त्वं सनातनम् ॥ भवन्मूर्तिः समायातः शेषोऽपि विलसत्फणः ॥ ६३ ॥ सहस्रधा क्षितिं भित्त्वा सहस्रफणमण्डलैः ॥ क्षितेः सहस्रच्छिद्रेषु यस्माद्भित्त्वा समुद्गताः ॥ ६४ ॥ फणसाहस्रमणिभिर्दग्धाः शेषस्य सुव्रत ॥ तस्मादेतन्महातीर्थं सरयूतीरगं शुभम् ॥ ख्यातं सहस्रधारेति भविष्यति न संशयः ॥ ६५ ॥ एतत्क्षेत्रप्रमाणं तु धनुषां पञ्चविंशतिः ॥ अत्र स्नानेन दानेन श्राद्धेन श्रद्धयान्वितः ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा विष्णुलोकं व्रजेन्नरः ॥ ६६ ॥ अत्र स्नातो नरो धीमाञ्छेषं संपूज्य चाव्ययम् ॥ तीर्थं संपूज्य विधिवद्विष्णुलोकमवाप्नुयात् ॥ ६७ ॥ तस्मादत्र प्रकर्तव्यं स्नानं विधिपुरःसरम् ॥ शेषरूपाहिवद्ध्येयाः पूज्या विप्रा विशेषतः ॥ ६८ ॥ स्वर्णं चान्नं च वासांसि देयानि श्रद्धयान्वितैः ॥ स्नानं दानं हरेः पूजा सर्वमक्षयतां व्रजेत् ॥ ६९ ॥

इस तीर्थ में स्नान, दान व श्राद्ध से सब पापों से शुद्धचित्त मनुष्य विष्णुलोक को जाता है ॥ ६६ ॥ इसमें नहाकर बुद्धिमान् मनुष्य अव्यय शेषजी को पूजकर व विधिपूर्वक तीर्थ को पूजकर विष्णुलोक को प्राप्त होता है ॥ ६७ ॥ इसलिये इसमें विधिपूर्वक स्नान करना चाहिये शेषरूप के समान ब्राह्मण विशेषकर ध्यान करने व पूजने योग्य हैं ॥ ६८ ॥ श्रद्धासंयुत पुरुषों को सुवर्ण, अन्न व वस्त्रों को देना चाहिये स्नान, दान व विष्णुका पूजन सब अक्षय होता है ॥ ६९ ॥

इसलिये यह महातीर्थ पृथ्वी में सदा सब कामनाओं का फलदायक होगा इसमें विचार करना न चाहिये ॥ ७० ॥ श्रावण में शुक्लपक्ष की जो पंचमी तिथि होती है उसमें यहां नागों को उद्देश करके विद्वानों को यत्न से शेषपूजनपूर्वक बड़ा उत्सव करना चाहिये उस बड़ेभारी तीर्थमें मनुष्यों के उत्सव करनेपर ॥ ७१ । ७२ ॥ नागपूजनपूर्वक ब्राह्मणों को भक्ति से प्रसन्न कराकर प्रसन्न होकर सब सर्प कभी मनुष्यों को पीड़ित नहीं करते हैं ॥ ७३ ॥ सावधान होते हुए जो मनुष्य वैशाख महीने में यहां स्नान करते हैं करोड़ों सौ कल्पों से भी उनकी पुनरावृत्ति नहीं होती है ॥ ७४ ॥ इसलिये यहां वैशाख महीने में यत्न से मनुष्यों को स्नान,

तस्मादेतन्महातीर्थं सर्वकामफलप्रदम् ॥ क्षितौ भविष्यति सदा नात्र कार्या विचारणा ॥ ७० ॥ श्रावणे शुक्लपक्षस्य या तिथिः पञ्चमी भवेत् ॥ तस्यामत्र प्रकर्तव्यो नागानुद्दिश्य यत्नतः ॥ ७१ ॥ उत्सवो विपुलः सद्भिः शेषपूजापुरःसरम् ॥ उत्सवे तु कृते तत्र तीर्थे महति मानवैः ॥ ७२ ॥ सन्तोष्य च द्विजान्भक्त्या नागपूजापुरस्सरम् ॥ सन्तुष्टाः फणिनः सर्वे पीडयन्ति न मानुषान् ॥ ७३ ॥ वैशाखमासे ये स्नानं कुर्वन्त्यत्र समाहिताः ॥ न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि ॥ ७४ ॥ तस्मादत्र प्रकर्तव्यं माधवे यत्नतो नरैः ॥ स्नानं दानं हरिः पूज्यो ब्राह्मणाश्च विशेषतः ॥ तीर्थे कृतेऽत्र मनुजैः सर्वकामफलप्रदः ॥ ७५ ॥ विष्णुमुद्दिश्य यो दद्यात्सालंकारां पयस्विनीम् ॥ सवत्सामत्र सत्तीर्थे सत्पात्राय द्विजन्मने ॥ ७६ ॥ तस्य वासो भवेन्नित्यं विष्णुलोके सनातने ॥ अक्षयं स्वर्गमाप्नोति तीर्थस्नानेन मानवः ॥ ७७ ॥ अत्र पूज्यौ विशेषेण नरैः श्रद्धासमन्वितैः ॥ वैशाखे मास्यलङ्कारैर्वस्त्रैश्च द्विज

दान करना चाहिये विष्णु और ब्राह्मणों को यहां विशेषकर पूजना चाहिये मनुष्यों को यह तीर्थ करने पर सब कामनाओं का फलदायक होता है ॥ ७५ ॥ इस उत्तम तीर्थ में विष्णुजी को उद्देश कर आभूषण समेत व बछड़ा सहित गऊको जो सत्पात्र ब्राह्मण के लिये देता है ॥ ७६ ॥ सनातन विष्णुलोक में उसका सदैव निवास होता है तीर्थस्नान से मनुष्य अक्षय स्वर्ग को प्राप्त होता है ॥ ७७ ॥ वैशाख महीने में यहां श्रद्धा सहित मनुष्यों को विशेष कर वस्त्रों व आभूषणों

से ब्राह्मण स्त्री पुरुष को पूजन करना चाहिये ॥ ७८ ॥ लक्ष्मीनारायणकी प्रीति के लिये विशेष कर वैशाख महीने में पृथ्वी में स्थित तीर्थ ॥ ७९ ॥ सभी मिल कर इसमें निस्सन्देह स्थित होते हैं इसलिये विशेषकर वैशाख महीने में मनुष्यों को इस तीर्थ में नहाने से सब तीर्थों के स्नान का बड़ा भारी फल होता है ॥ ८० ॥ अगस्त्यजी बोले कि हे मुनिराज ! इन्द्र ने देवसंगत लक्ष्मणजी से यह कह कर उस तीर्थ में पृथ्वी का भार हरने में समर्थ शेषजी को स्थापित कर के लक्ष्मणजी को विमान पै विठाकर स्वर्ग को आदर से प्रस्थान किया ॥ ८१ ॥ तब से लगाकर वह तीर्थ बड़ी प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ वैशाख महीने में तीर्थ का

दम्पती ॥ ७८ ॥ लक्ष्मीनारायणप्रीत्यै लक्ष्मीप्राप्त्यै विशेषतः ॥ वैशाखे मासि तीर्थानि पृथिवीसंस्थितानि वै ॥ ७९ ॥ सर्वाण्यपि च संगत्य स्थास्यन्त्यत्र न संशयः ॥ तस्मादत्र विशेषेण वैशाखे स्नानतो नृणाम् ॥ सर्वतीर्थावगाहस्य भविष्यति फलं महत् ॥ ८० ॥ अगस्त्य उवाच ॥ इत्युक्त्वा मुनिराजेन्द्रो लक्ष्मणं सुरसंगतम् ॥ शेषं संस्थाप्य तत्तीर्थे भूभारहरणक्षमम् ॥ लक्ष्मणं यानमारोप्य प्रतस्थे दिवमादरात् ॥ ८१ ॥ तदाप्रभृति तत्तीर्थं विख्यातिं परमां ययौ ॥ वैशाखे मासि तीर्थस्य माहात्म्यं परमं स्मृतम् ॥ ८२ ॥ पञ्चम्यामपि शुक्लायां श्रावणस्य विशेषतः ॥ अन्यदा पर्वणि श्रेष्ठं विशेषं स्नानमाचरेत् ॥ सहस्रधारातीर्थे च नरः स्वर्गमवाप्नुयात् ॥ ८३ ॥ विधिवदिह हि धीमान्स्नानदानानि तीर्थे नरवर इह शक्त्या यः करोत्यादरेण ॥ स इह विपुलभोगान्निर्मलात्मा च भक्त्या भजति भुजगशायिश्रीपते रात्मनैक्यम् ॥ ८४ ॥ इति श्रीअयोध्यामाहात्म्ये ब्रह्मकुण्डसहस्रधारातीर्थमाहात्म्यवर्णनंनाम द्वितीयोऽध्यायः २ ॥

माहात्म्य उत्तम कहा गया है ॥ ८२ ॥ विशेष कर श्रावणकी शुक्लपक्षवाली पंचमीमें व अन्य पर्व में सहस्रधारा तीर्थ में श्रेष्ठ व विशेष स्नान करै तो मनुष्य स्वर्ग को प्राप्त होता है ॥ ८३ ॥ हे नरवर ! जो बुद्धिमान मनुष्य इस तीर्थ में विधिपूर्वक शक्तिके अनुसार स्नान, दानादिक करता है वह निर्मलचित्त पुरुष इस लोक में बहुत सुखों को भोगता है और भक्ति के कारण शेषशायी विष्णुजी के शरीर की एकताको प्राप्त होता है ॥ ८४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतश्रीअयोध्यामाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे ब्रह्मकुण्डसहस्रधारातीर्थमाहात्म्यवर्णनंनाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ❁ ॥

दो० । सरयू सरिता माहिं जिमि तीरथ स्वर्गद्वार । अहै तीसरे में सोई कह्यो चरित सुखसार ॥ सूतजी बोले कि अगस्त्यजी का यह वचन आदर से सुनकर बुद्धिमान् कृष्णद्वैपायन मुनि ने मधुर वचन कहा ॥ १ ॥ (व्यासजी बोले) कि हे भगवन् ! तुमसे यह अद्भुत उत्तम तीर्थमाहात्म्य को सुनकर मेरा मन परम प्रसन्नता को प्राप्त हुआ ॥ २ ॥ हे सुव्रत ! यथार्थ सुनते हुए मुझसे अन्य उत्तम तीर्थ को कहिये क्योंकि सुनते हुए मेरे मन की तृप्ति नहीं होती है ॥ ३ ॥ अगस्त्यजी बोले कि हे विप्रजी ! अन्य अति उत्तम तीर्थ को मैं कहता हूं सुनिये सदैव सब पापों का नाशक स्वर्गद्वार ऐसा प्रसिद्ध तीर्थ है ॥ ४ ॥ हे सुव्रत !

सूत उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचो धीमानादरात्कुम्भजन्मनः ॥ प्रोवाच मधुरं वाक्यं कृष्णद्वैपायनो मुनिः ॥ १ ॥ व्यास उवाच ॥ भगवन्नद्भुतमिदं तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ श्रुत्वा त्वत्तो मम मनः परमानन्दमाययौ ॥ २ ॥ अन्यत्तीर्थ वरं ब्रूहि तत्त्वेन मम शृण्वतः ॥ न तृप्तिरस्ति मनसः शृण्वतो मम सुव्रत ॥ ३ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ शृणु विप्र प्रवक्ष्यामि तीर्थमन्यदनुत्तमम् ॥ स्वर्गद्वारमिति ख्यातं सर्वपापहरं सदा ॥ ४ ॥ स्वर्गद्वारस्य माहात्म्यं विस्तराद्व क्तुमीश्वरः ॥ नहि कश्चिदतो वत्स संक्षेपाच्छृणु सुव्रत ॥ ५ ॥ सहस्रधारामारभ्य पूर्वतः सरयूजले ॥ षट्त्रिंशदाधि का प्रोक्ता धनुषां षट्शती मितिः ॥ ६ ॥ स्वर्गद्वारस्य विस्तारः पुराणज्ञैर्विशारदैः ॥ स्वर्गद्वारसमं तीर्थं न भूतं न भविष्यति ॥ ७ ॥ सत्यं सत्यं पुनः सत्यं नासत्यं मम भाषितम् ॥ स्वर्गद्वारसमं तीर्थं नास्ति ब्रह्माण्डगोलके ॥ ८ ॥ हित्वा दिव्यानि भौमानि तीर्थानि सकलान्यपि ॥ प्रातरागत्य तिष्ठन्ति तत्र संश्रित्य सुव्रत ॥ ९ ॥ तस्मादत्र प्रक

स्वर्गद्वारका माहात्म्य विस्तार से कहने के लिये कोई समर्थ नहीं है इससे हे वत्स ! संक्षेप से सुनिये ॥ ५ ॥ सरयू जल में पूर्व और सहस्रधारा से लगाकर छह सौ छत्तिस धनुष ॥ ६ ॥ स्वर्गद्वार का विस्तार पुराण के जाननेवाले चतुर पुरुषों ने कहा है स्वर्गद्वार के समान तीर्थ न हुआ है न होगा ॥ ७ ॥ सत्य, सत्य और सत्य है मेरा वचन असत्य नहीं है कि स्वर्गद्वार के समान तीर्थ ब्रह्माण्डगोलक में नहीं है ॥ ८ ॥ हे सुव्रत ! दिव्य तीर्थों को छोड़कर पृथ्वी के सभी तीर्थ प्रातःकाल आकर उसमें स्थित होते हैं ॥ ९ ॥ इस लिये अपना को सब तीर्थों के फलको चाहनेवाले मनुष्य को इसमें विशेषकर प्रातःस्नान करना

चाहिये ॥ १० ॥ हे द्विज ! स्वर्गद्वार के मध्य में जो प्राणी प्राणों को छोड़ते हैं वे विष्णुजी के उत्तम स्थान को प्राप्त होते हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ ११ ॥ यह मुक्ति का द्वार मनुष्यों को स्वर्गप्राप्ति करता है इस लिये अति उत्तम तीर्थ स्वर्गद्वार ऐसा प्रसिद्ध है ॥ १२ ॥ स्वर्गद्वार तीर्थ देवताओं को भी दुर्लभ है इसमें सन्देह नहीं है जो जो मनोरथ मनुष्य चाहता है उसको प्राप्त होता है ॥ १३ ॥ स्वर्गद्वार में उत्तम सिद्धि व स्वर्गद्वार में उत्तम गति होती है वहां जप, दान, हवन, दर्शन व तप जो कुछ किया जाता है ध्यान, पठन और दान वह सब अक्षय होता है ॥ १४ ॥ हज़ार जन्मों के मध्य में जो पाप पहले संचय किया होता है स्वर्गद्वार

र्तव्यं प्रातः स्नानं विशेषतः ॥ सर्वतीर्थावगाहस्य फलमात्मन ईप्सता ॥ १० ॥ त्यजन्ति प्राणिनः प्राणान्स्वर्गद्वारान्तरे द्विज ॥ प्रयान्ति परमं स्थानं विष्णोस्ते नात्र संशयः ॥ ११ ॥ मुक्तिद्वारमिदं पश्य स्वर्गप्राप्तिकरं नृणाम् ॥ स्वर्गद्वारमिति ख्यातं तस्मात्तीर्थमनुत्तमम् ॥ १२ ॥ स्वर्गद्वारं सुदुष्प्राप्यं देवैरपि न संशयः ॥ यद्यत्कामयते तत्र तत्तदाप्नोति मानवः ॥ १३ ॥ स्वर्गद्वारे परा सिद्धिः स्वर्गद्वारे परा गतिः ॥ जप्तं दत्तं हुतं दृष्टं तपस्तप्तं कृतं च यत् ॥ ध्यानमध्ययनं सर्वं दानं भवति चाक्षयम् ॥ १४ ॥ जन्मान्तरसहस्रेण यत्पापं पूर्वसंचितम् ॥ स्वर्गद्वारप्रविष्टस्य तत्सर्वं व्रजति क्षयम् ॥ १५ ॥ ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा वै वर्णसंकराः ॥ कृमिम्लेच्छाश्च ये चान्ये संकीर्णाः पापयोनयः ॥ १६ ॥ कीटाः पिपीलिकाश्चैव ये चान्ये मृगपक्षिणः ॥ कालेन निधनं प्राप्ताः स्वर्गद्वारे शृणु द्विज ॥ १७ ॥ कौमोदकीकराः सर्वे पक्षिणो गरुडध्वजाः ॥ शुभे विष्णुपुरे रम्ये जायन्ते तत्र मानवाः ॥ १८ ॥ अकामो वा

में पैठे हुए प्राणी का वह सब नाश होजाता है ॥ १५ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र व संकरवर्ण, कीट, म्लेच्छ और जो संकीर्ण पापयोनि हैं ॥ १६ ॥ हे द्विज ! कीड़े व पिपीलिका तथा अन्य जो मृग व पक्षी स्वर्गद्वार में काल से मृत्यु को प्राप्त हुए हैं उनको सुनिये ॥ १७ ॥ कि सब पक्षी कौमोदकी गदा को हाथ में लेकर गरुड़ध्वज होतेहुए उत्तम रमणीय विष्णुलोक में वहां मनुष्य होते हैं ॥ १८ ॥ कामनारहित व कामनासमेत भी प्राणी तीर्थ में प्राप्त होकर जो प्राणों को छोड़ता है

वह विष्णुलोक में पूजा जाता है ॥ १९ ॥ मुनि, देवता, सिद्ध, साध्य, यक्ष व पवनगण जिन्होंने यज्ञोपवीत की प्रमाण से (मेरा इतना तीर्थ है) विभाग किया है ॥ २० ॥ वे देवगण मध्याह्न में यहां समीपता करते हैं इस लिये वहां मध्याह्न में जो आदर से स्नान करते हैं ॥ २१ ॥ व जो जितेन्द्रिय मनुष्य स्वर्गद्वार में अनशन व्रत करते हैं महीने भर उपवास करनेवाले वे उत्तम स्थान को प्राप्त होते हैं ॥ २२ ॥ जो वहां अन्नदान में परायण व रत्नदायक तथा भूमिदायक व ब्राह्मणों के लिये गऊ तथा वस्त्र को देते हैं वे विष्णुजी के मन्दिर को प्राप्त होते हैं ॥ २३ ॥ जहां सिद्ध, महात्मा, मुनि व पितर वे सब स्वर्ग को प्राप्त होते

सकामो वा अपि तीर्थगतोऽपि वा ॥ स्वर्गद्वारे त्यजन्प्राणान्विष्णुलोके महीयते ॥ १९ ॥ मुनयो देवताः सिद्धाः साध्या यक्षा मरुद्गणाः ॥ यज्ञोपवीतमात्रेण विभागं चक्रिरे तु ये ॥ २० ॥ मध्याह्नेऽत्र प्रकुर्वन्ति सान्निध्यं देवतागणाः ॥ तस्मात्तत्र प्रकुर्वन्ति मध्याह्ने स्नानमादरात् ॥ २१ ॥ कुर्वन्त्यनशनं ये तु स्वर्गद्वारे जितेन्द्रियाः ॥ प्रयान्ति परमं स्थानं ये च मासोपवासिनः ॥ २२ ॥ अन्नदानरता ये च रत्नदा भूमिदा नराः ॥ गोवस्त्रदाश्च विप्रेभ्यो यान्ति ते भवनं हरेः ॥ २३ ॥ यत्र सिद्धा महात्मानो मुनयः पितरस्तथा ॥ स्वर्गं प्रयान्ति ते सर्वे स्वर्गद्वारं ततः स्मृतम् ॥ २४ ॥ चतुर्धा च तनुं कृत्वा देवदेवो हरिः स्वयम् ॥ अत्र वै रमते नित्यं भ्रातृभिः सह राघवः ॥ २५ ॥ ब्रह्मलोकं परित्यज्य चतुर्वक्त्रः सनातनः ॥ अत्रैव रमते नित्यं देवैः सह पितामहः ॥ २६ ॥ कैलासनिलयावासी शिवस्तत्रैव संस्थितः ॥ २७ ॥ मेरुमन्दरमात्रोऽपि राशिः पापस्य कर्मणः ॥ स्वर्गद्वारं समासाद्य स सर्वो व्रजति क्षयम् ॥ २८ ॥ या गतिर्ज्ञानत

हैं उसीसे स्वर्गद्वार कहा गया है ॥ २४ ॥ देवदेव विष्णुजी चार प्रकार का शरीर करके भाइयों समेत आपही रघुनाथजी सदैव यहां रमण करते हैं ॥ २५ ॥ ब्रह्मलोक को छोड़कर सनातन चतुरानन ब्रह्माजी देवताओं समेत सदैव यहां रमते हैं ॥ २६ ॥ व कैलास स्थान में रहनेवाले शिवजी वहीं स्थित हैं ॥ २७ ॥ सुमेरु व मन्दराचल के समान भी पापकर्म की जो राशि है वह स्वर्गद्वार को प्राप्त होकर सब नाश होजाती है ॥ २८ ॥ ज्ञान तपवाले व यज्ञ करनेवाले

मनुष्यों की जो गति होती है स्वर्गद्वार में मरे हुए प्राणियों की वह उत्तम गति होती है ॥ २९ ॥ ऋषि, देवगण व जप तथा होम में परायण यती व मोक्ष चाहनेवाले मनुष्य स्वर्गद्वार को सेवन करते हैं ॥ ३० ॥ साठ हज़ार वर्ष तक काशीवास में जो फल होता है वह फल आधे निमेष से कलियुग में अयोध्यापुरी में होता है ॥ ३१ ॥ काशी में प्राण छोड़नेवाले योगयुक्त मनुष्यों की जो गति होती है वह एकादशी में सरयू में स्नान ही से होती है ॥ ३२ ॥ स्वर्गद्वार में मर कर कोई नरक को नहीं देखता है विष्णुजी से दया किये हुए सब उत्तम गति को प्राप्त होते हैं ॥ ३३ ॥ हे द्विजोत्तम ! पृथ्वीलोक, आकाश व स्वर्ग में जो

पसां या गतिर्यज्ञयाजिनाम् ॥ स्वर्गद्वारे मृतानां तु सा गतिर्विहिता शुभा ॥ २९ ॥ ऋषिदेवासुरगणैर्जपहोमपरायणैः ॥ यतिभिर्मोक्षकामैश्च स्वर्गद्वारो निषेव्यते ॥ ३० ॥ षष्टिवर्षसहस्राणि काशीवासेषु यत्फलम् ॥ तत्फलं निमिषार्धेन कलौ दाशरथीं पुरीम् ॥ ३१ ॥ या गतिर्योगयुक्तानां वाराणस्यां तनुत्यजाम् ॥ सा गतिः स्नानमात्रेण सरय्वां हरिवासरे ॥ ३२ ॥ स्वर्गद्वारे मृतः कश्चिन्नरकं नैव पश्यति ॥ केशवानुगृहीता हि सर्वे यान्ति परां गतिम् ॥ ३३ ॥ भूलोके चान्तरिक्षे च दिवि तीर्थानि यानि वै ॥ अतीत्य वर्तते तानि तीर्थान्येतद्द्विजोत्तम ॥ ३४ ॥ विष्णुभक्तिं समासाद्य रमन्ते तु सुनिश्चिताः ॥ संहृत्य शक्तितः कामं विषयेषु हि संस्थितम् ॥ ३५ ॥ शक्तितः सर्वतो युक्त्वा शक्तिस्तपसि संस्थिता ॥ न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि ॥ ३६ ॥ हन्यमानोऽपि यो विद्वान्वसेच्छस्त्रशतैरपि ॥ स याति परमं स्थानं यत्र गत्वा न शोचति ॥ ३७ ॥ स्वर्गद्वारे वियुज्येत स याति परमां गतिम् ॥ उत्तरं दक्षिणं

तीर्थ हैं उनको उल्लंघन करके यह तीर्थ वर्तमान है ॥ ३४ ॥ विष्णुभक्ति को प्राप्त होकर मनुष्य निश्चय कर रमते हैं शक्ति से विषयों में स्थित मनोरथ को संहार कर ॥ ३५ ॥ शक्ति से सब ओर योग कर जिनकी शक्ति तपस्या में स्थित है उनकी करोड़ों सौ कल्पों से पुनरावृत्ति नहीं होती है ॥ ३६ ॥ सैकड़ों शस्त्रों से मारा जाता हुआ भी जो विद्वान् वहां बसता है वह उत्तम स्थान को प्राप्त होता है जहां जाकर शोचता नहीं है ॥ ३७ ॥ स्वर्गद्वार में जो मरता है वह उत्तम गति

को प्राप्त होता है वहां उत्तरायण व दक्षिणायन का विकल्प न करै ॥ ३८ ॥ जो स्वर्गद्वार का आश्रय करते हैं उनको सब काल उत्तम है वहां स्नान ही से प्राणियों के पाप नाश होजाते हैं ॥ ३९ ॥ पृथ्वी में जो मनुष्य शरीर भर पाप करते हैं उनको आदर से अयोध्या उत्तम स्थान कहा गया है ॥ ४० ॥ जेठ महीने में शुक्ल पक्ष में विशेष कर पौर्णमासी में देवताओं से उन चन्द्रहरिजी की वार्षिकी यात्रा कही गई है ॥ ४१ ॥ हे विप्र ! वहां व्रतयोगी पुरुषों को सब यज्ञों से अधिक फलवाला चन्द्रसहस्र उद्यापन बड़े यत्न से करना चाहिये ॥ ४२ ॥ क्योंकि उसके करने पर महापातकों के विनाश से मनुष्यों को स्वर्ग होता है ॥ ४३ ॥

वापि अयनं न विकल्पयेत् ॥ ३८ ॥ सर्वस्तेषां शुभः कालः स्वर्गद्वारं श्रयन्ति ये ॥ स्नानमात्रेण पापानि विलयं यान्ति देहिनाम् ॥ ३९ ॥ यावत्पापानि देहेन ये कुर्वन्ति जनाः क्षितौ ॥ अयोध्या परमं स्थानं तेषामीरितमादरात् ॥ ४० ॥ ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे पञ्चदश्यां विशेषतः ॥ तस्य सांवत्सरी यात्रा देवैश्चन्द्रहरेः स्मृता ॥ ४१ ॥ तस्मिन्नुद्यापनं चन्द्रसहस्रं व्रतयोगिभिः ॥ कार्यं प्रयत्नतो विप्र सर्वयज्ञफलाधिकम् ॥ ४२ ॥ तस्मिन्कृते महापापक्षयात्स्वर्गो भवेन्नृणाम् ॥ ४३ ॥ श्रीव्यास उवाच ॥ भगवन्ब्रूहि तत्त्वेन तस्य चन्द्रहरेः शुभाम् ॥ उत्पत्तिं च तथा चन्द्रव्रतस्योद्यापने विधिम् ॥ ४४ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ अयोध्यानिलयं विष्णुं नत्वा शीतांशुरुत्सुकः ॥ आगच्छत्तीर्थमाहात्म्यं साक्षात्कर्तुं सुधानिधिः ॥ अत्रागत्य च चन्द्रोऽथ तीर्थयात्रां चकार सः ॥ ४५ ॥ क्रमेण विधिपूर्वं च नानाश्चर्यसमन्वितः ॥ समाराध्य ततो विष्णुं तपसा दुश्चरेण वै ॥ ४६ ॥ तत्प्रसादं समासाद्य स्वाभिधानपुरस्सरम् ॥

श्रीव्यासजी बोले कि हे भगवन् ! उन चन्द्रहरि की उत्तम उत्पत्ति को यथार्थ कहिये और चन्द्रव्रत के उद्यापन में विधि कहिये ॥ ४४ ॥ अगस्त्यजी बोले कि अयोध्यावासी विष्णु को प्रणाम करके उत्कण्ठित सुधानिधि चन्द्रमा तीर्थमाहात्म्य को प्रत्यक्ष करने के लिये आया और यहां आकर उस चन्द्रमा ने तीर्थयात्रा किया ॥ ४५ ॥ अनेकों आश्चर्यों समेत उसने विधिपूर्वक क्रम से यात्रा किया तदनन्तर कठिन तप से विष्णुको आराधन कर ॥ ४६ ॥ उनकी प्रसन्नता

को प्राप्त होकर अपने नामपूर्वक विष्णुको स्थापन किया उससे चन्द्रहरि कहे गये हैं ॥ ४७ ॥ हे सुव्रत ! वासुदेव के प्रसाद से वह स्थान अद्भुत होगया वह विष्णुजी का अत्यन्त गुप्त स्थान है ॥ ४८ ॥ हे विप्र ! सबही प्राणियों के मोक्ष के स्वामी (श्रीरामजीके) इस स्थान में सदैव सिद्धलोग विष्णुजी के व्रत में स्थित होते हैं ॥ ४९ ॥ अनेक भांति के वेष को धारण करनेवाले विष्णुलोकाभिलाषी मुक्तात्मा जितेन्द्रिय पुरुष उत्तम योग का अभ्यास करते हैं ॥ ५० ॥ जिस प्रकार मनुष्य यहां धर्म को पाता है उस प्रकार अन्यत्र कहीं नहीं प्राप्त होता है दान, व्रत व होम सब अक्षय होता है॥ ५१ ॥ प्राणियोंको सदैव सब कामनाओंकी फलकी प्राप्ति

हरिं संस्थापयामास तेन चन्द्रहरिः स्मृतः ॥ ४७ ॥ वासुदेवप्रसादेन तत्स्थानं जातमद्भुतम् ॥ तद्धि गुह्यतमं स्थानं वासुदेवस्य सुव्रत ॥ ४८ ॥ सर्वेषामेव भूतानां भर्तुर्मोक्षस्य सर्वदा ॥ अस्मिन्सिद्धाः सदा विप्र गोविन्दव्रतमास्थिताः ॥ ४९ ॥ नानालिङ्गधरा नित्यं विष्णुलोकाभिकाङ्क्षिणः ॥ अभ्यस्यन्ति परं योगं मुक्तात्मानो जितेन्द्रियाः ॥ ५० ॥ यथा धर्ममवाप्नोति अन्यत्र न तथा क्वचित् ॥ दानं व्रतं तथा होमः सर्वमक्षयतां व्रजेत् ॥ ५१ ॥ सर्वकामफलप्राप्तिर्जायते प्राणिनां सदा ॥ तस्मादत्र विधातव्यं प्राणिभिर्यत्नतः क्रमात् ॥ दानादिकं विप्रपूजा दम्पत्योश्च विशेषतः ॥ ५२ ॥ सर्वयज्ञाधिकफलं सर्वतीर्थावगाहनम् ॥ सर्वदेवावलोकस्य यत्पुण्यं जायते नृणाम् ॥ ५३ ॥ तत्सर्वं जायते पुण्यं प्राणिनामस्य दर्शनात् ॥ तस्मादेतन्महाक्षेत्रं पुराणादिषु गीयते ॥ ५४ ॥ उद्यापनविधिश्चात्र नृभिर्द्विजपुरस्सरम् ॥ अग्रे चन्द्रहरेश्चन्द्रसहस्रव्रतसंज्ञकः ॥ ५५ ॥ गते वर्षद्वये सार्धे पञ्चपक्षे

होती है इस लिये यहां प्राणियों को यत्न से क्रम से दानादिक, विप्रपूजन व विशेषकर स्त्री पुरुष का पूजन करना चाहिये ॥ ५२ ॥ सब यज्ञोंसे अधिक फल व सब तीर्थों का स्नान और सब देवताओं के दर्शन का जो पुण्य मनुष्यों को होताहै ॥ ५३ ॥ वह सब पुण्य प्राणियों को इसके दर्शन से होताहै इस लिये पुराणादिकों में यह महाक्षेत्र गाया जाता है ॥ ५४ ॥ मनुष्योंको यहां चन्द्रहरि के आगे विप्रपूजनपूर्वक चन्द्रसहस्रव्रत संज्ञक उद्यापन विधि करना चाहिये ॥ ५५ ॥ ढाई वर्ष,

पांच पक्ष, दो दिन बीतने पर दिन के आठवें भाग में एक अधिमास पड़ता है ॥ ५६ ॥ और चार महीने संयुत तिरासी वर्ष में हज़ार चन्द्रमा यानी पौर्णमासी होते हैं तब तक जो मनुष्य जीता है उसको यात्रा के प्रसंग से उद्यापन करना चाहिये ॥ ५७ ॥ सदैव यज्ञ करनेवालों को जो उत्तम पुण्य कहा गया है और सत्यवादियों में जो पुण्य होता है और सुवर्णदाता में जो पुण्य होता है हे विप्र ! सहस्र-वर्ष जीनेवालों को वह पुण्य मिलता है ॥ ५८ ॥ समस्त सुखों का दायक वैसा पुण्यव्रत यहां कहा जाता है ॥ ५६ ॥ चौदसि में दन्तधावनपूर्वक पवित्र होकर नहाकर ब्रह्मचर्यसंयुत वचन, मन, शरीर को जीते और पौर्णमासी में वैसा

दिनद्वये ॥ दिवसस्याऽष्टमे भागे पतत्येकोऽधिमासकः ॥ ५६ ॥ त्र्यधिके वा अशीत्यब्दे चतुर्मासयुते ततः ॥ भवेच्चन्द्रसहस्रं तु तावज्जीवति यो नरः ॥ उद्यापनं प्रकर्त्तव्यं तेन यात्रा प्रयत्नतः ॥ ५७ ॥ यत्पुण्यं परमं प्रोक्तं सततं यज्ञयाजिनाम् ॥ सत्यवादिषु यत्पुण्यं यत्पुण्यं हेमदायिनि ॥ तत्पुण्यं लभते विप्र सहस्राब्दस्य जीविभिः ॥ ५८ ॥ सर्वसौख्यप्रदं तादृक्पुण्यव्रतमिहोच्यते ॥ ५६ ॥ चतुर्दश्यां शुचिः स्नात्वा दन्तधावनपूर्वकम् ॥ चरितब्रह्मचर्य्यश्च जितवाक्कायमानसः ॥ पौर्णमास्यां तथा कृत्वा चन्द्रपूजां च कारयेत् ॥ ६० ॥ पूर्वं च मातरः पूज्या गौर्यादिकक्रमेण च ॥ ऋत्विजः पूजयेद्भक्त्या वृद्धिश्राद्धपुरस्सरम् ॥ ६१ ॥ प्रयतैः प्रतिमा कार्या चन्द्रमण्डलसन्निभा ॥ सहस्रसंख्या ह्यथवा तदर्द्धं वा तदर्द्धकम् ॥ निजवित्तानुमानेन तदर्द्धेन तदर्द्धिकम् ॥ ६२ ॥ ततः श्रद्धानुमानाद्वा कार्या वित्तानुमानतः ॥ अथवा षोडश शुभा विधातव्याः प्रयत्नतः ॥ ६३ ॥ चन्द्रपूजां ततः कुर्यादागमोक्तविधानतः ॥ माषैः षोड

करके चन्द्रपूजन करै ॥ ६० ॥ पहले गौरी आदि के क्रमसे मातृकाओं को पूजै और नान्दीमुख श्राद्धपूर्वक ऋत्विजों को पूजै ॥ ६१ ॥ पवित्र पुरुषोंको चन्द्रमण्डल के समान मूर्ति बनाना चाहिये सहस्र संख्या या उसकी आधी व उसकी आधी या उसकी आधी व उससे आधी प्रतिमा अपनी द्रव्य के अनुसार करना चाहिये ॥ ६२ ॥ तदनन्तर श्रद्धा के अनुसार व द्रव्य के अनुसार या सोलह मूर्तियों को यत्न से बनावै ॥ ६३ ॥ तदनन्तर शास्त्रोक्त विधि से चन्द्रपूजन करै और

प्रत्येक उत्तम प्रतिमा को सोलह माशे भर करना चाहिये ॥ ६४ ॥ व द्रव्य के अनुसार चन्द्रमा के मन्त्र से हवन करना चाहिये और मूर्तिको स्थापन करै व चन्द्रमा का मन्त्र पढ़ै ॥ ६५ ॥ व बड़े यत्न से सोमोत्पत्ति व सोमसूक्त को पढ़ै तदनन्तर शास्त्रोक्त विधि से चन्द्रमा का पूजन करै ॥ ६६ ॥ व मण्डल में चन्द्र न्यास व कलान्यास करै तथा विधिपूर्वक गेरह इन्द्रियों का न्यास करै ॥ ६७ ॥ व उत्तम चावलों से चन्द्रमा के बिम्ब के समान मण्डल करना चाहिये और मध्य में गोदुग्ध से पूर्ण कलश को स्थापन करना चाहिये ॥ ६८ ॥ बाहर चारों कोनों में सम्पूर्ण कलशों को स्थापन करै व मण्डल में क्रम से नामों से चन्द्रपूजन करना

शभिः कार्या प्रत्येकं प्रतिमा शुभा ॥ ६४ ॥ सोममन्त्रेण होमस्तु कार्यो वित्तानुमानतः ॥ प्रतिमास्थापनं कुर्यात्सो ममन्त्रमुदीरयेत् ॥६५॥ सोमोत्पत्तिं सोमसूक्तं पाठयेच्च प्रयत्नतः ॥ चन्द्रपूजां ततः कुर्यादागमोक्तविधानतः ॥ ६६ ॥ चन्द्रन्यासं कलान्यासं कारयेन्मण्डले जलम् ॥ एकादशेन्द्रियन्यासं तथैव विधिपूर्वकम् ॥ ६७ ॥ चन्द्रबिम्ब निभं कार्य्यं मण्डलं शुभतण्डुलैः ॥ मध्ये च कलशः स्थाप्यो गव्येन पयसाप्लुतः ॥ ६८ ॥ चतुरस्रेषु संपूर्णा न्कलशान्स्थापयेद्बहिः ॥ मण्डले चन्द्रपूजा च कर्तव्या नामभिः क्रमात् ॥ ६९ ॥ हिमांशवे नमश्चैव सोमचन्द्राय वै नमः ॥ चन्द्राय विधवे नित्यं नमः कुमुदबन्धवे ॥ ७० ॥ सुधांशवे च सोमाय ओषधीशाय वै नमः ॥ नमोऽब्जाय मृगाङ्काय कलानां निधये नमः ॥ ७१ ॥ नमो नक्षत्रनाथाय शर्वरीपतये नमः ॥ जैवातृकाय सततं द्विजराजाय वै नमः ॥ ७२ ॥ एवं षोडशभिश्चन्द्रः स्तोतव्यो नामभिःक्रमात् ॥ ७३ ॥ ततो वै प्रयतो दद्याद्विधिवन्मन्त्रपूर्व

चाहिये ॥ ६९ ॥ हिमांशु के लिये नमस्कार है व सोमचन्द्र के लिये प्रणाम है और चन्द्रमा के लिये तथा कुमुदबन्धु के लिये सदैव नमस्कारहै ॥ ७० ॥ व सुधांशु, सोम तथा ओषधीश के लिये नमस्कार है और अब्ज, मृगाङ्क व कलाओं के निधि के लिये प्रणाम है ॥ ७१ ॥ नक्षत्रनाथ व शर्वरीपति के लिये प्रणाम है व जैवातृक तथा द्विजराज के लिये सदैव प्रणाम है ॥ ७२ ॥ इस प्रकार सोलह नामों से क्रम से चन्द्रमा की स्तुति करना चाहिये ॥ ७३ ॥ तदनन्तर पवित्रपुरुष फल, चन्दन

व पुष्प समेत शंख में जल को लेकर विधि से मन्त्रपूर्वक अर्घ्य को देवै ॥ ७४ ॥ हे प्रति महीने में बार बार उत्पन्न होनेवाले, शशाङ्क! तुम्हारे लिये प्रणाम है रोहिणी समेत तुम मेरे अर्घ्य को ग्रहण करो ॥ ७५ ॥ इस प्रकार विधिपूर्वक चन्द्रमा को पूजकर प्रणाम करै व रत्नों समेत दुग्ध से पूर्ण सोलह जो अन्य कलश हैं ॥ ७६ ॥ वस्त्राच्छादन समेत उन कलशों को शान्ति के लिये ब्राह्मण के लिये देना चाहिये तदनन्तर दूध व जल से अभिषेक करै ॥ ७७ ॥ व द्रव्य के अनुसार ऋत्विजों के मन को प्रसन्न करना चाहिये और वहां विशेष कर कुटुम्ब समेत ब्राह्मण को भोजन करावै ॥ ७८ ॥ और वस्त्रों से स्त्री पुरुष ब्राह्मण को पूजना चाहिये

कम् ॥ शङ्खतोयं समादाय सपुष्पं फलचन्दनम् ॥ ७४ ॥ नमस्ते माससमासान्ते जायमान पुनःपुनः ॥ गृहाणार्घ्यं शशाङ्क त्वं रोहिण्या सहितो मम ॥ ७५ ॥ एवं संपूज्य विधिवच्छशिनं प्रणतो भवेत् ॥ षोडशान्ये च कलशा दुग्धपूर्णाः सरत्नकाः ॥ ७६ ॥ सवस्त्राच्छादनाः शान्त्यै दातव्यास्ते द्विजन्मने ॥ अभिषेकं ततः कुर्यात्पायसेन जलेन तु ॥ ७७ ॥ ऋत्विजां मनसस्तुष्टिः कार्या वित्तानुमानतः ॥ ब्राह्मणं भोजयेत्तत्र सकुटुम्बं विशेषतः ॥ ७८ ॥ पूजनीयौ प्रयत्नेन वस्त्रैश्च द्विजदम्पती ॥ कर्तव्यं च ततो भूरिदक्षिणादानमुत्तमम् ॥ ७९ ॥ प्रतिमाश्च प्रदातव्या द्विजेभ्यो धेनुपूर्विकाः ॥ सुवर्णं रजतं वस्त्रं तथान्नं च विशेषतः ॥ दातव्यं चन्द्रसुप्रीत्यै हर्षादेवं द्विजन्मने ॥ ८० ॥ उपवासविधानेन दिनशेषं नयेत्सुधीः ॥ अनन्तरे च दिवसे कुर्याद्भगवदर्चनम् ॥ बान्धवैः सह भुञ्जीत नियमं च विसर्ज्जयेत् ॥ ८१ ॥ एवं च कुरुते चन्द्रसहस्रं व्रतमुत्तमम् ॥ ब्रह्मघ्नोऽपि सुरापोऽपि स्तेयी च गुरुतल्पगः ॥ व्रतेनानेन

तदनन्तर उत्तम बहुत दक्षिणा दान करना चाहिये ॥ ७९ ॥ व ब्राह्मणों के लिये गऊ समेत मूर्तियों को देना चाहिये और सोना, चांदी, वस्त्र व विशेष कर अन्न को हर्ष से चन्द्रमा की प्रीति के लिये ब्राह्मण के लिये देना चाहिये ॥ ८० ॥ व उपास की विधि से बुद्धिमान् शेष दिनको व्यतीत करै दूसरे दिन विष्णुपूजन करै और बन्धुवों समेत भोजन करै व नियम को छोड़ै ॥ ८१ ॥ इस प्रकार जो उत्तम चन्द्रसहस्रव्रत करता है ब्रह्मघाती, मदिरा पीनेवाला, चोर व गुरुशय्यागामी

मनुष्य इस व्रत से शुद्धचित्त होकर चन्द्रलोक को जाता है ॥ ८२ ॥ हे विप्र ! जैसा कि विष्णुको प्रिय होता है वैसा जो निश्चय करके करता है तो मनुष्य कृतार्थ होजाता है ॥ ८३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतेऽयोध्यामाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे चन्द्रसहस्रव्रतोद्यापनविधिवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

दो० । यथा धर्महरिदेव को थप्यो धर्म द्विजनाथ । सो चौथे अध्याय में वर्णित उत्तम गाथ ॥ अगस्त्यजी बोले कि उस चन्द्रहरि स्थान से आग्नेय दिशा में

शुद्धात्मा चन्द्रलोकं व्रजेन्नरः ॥ ८२ ॥ यादृशश्च भवेद्विप्रप्रियो नारायणस्य च ॥ एवं करोति नियतं कृतकृत्यो भवेन्नरः ॥ ८३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतेऽयोध्यामाहात्म्ये चन्द्रसहस्रव्रतोद्यापनविधिवर्णनंनाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

अगस्त्य उवाच ॥ तस्माच्चन्द्रहरिस्थानादाग्नेय्यां दिशि संस्थितः ॥ देवो धर्महरिर्नाम कलिकल्मषनाशकः ॥ १ ॥ वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञः स्वकर्मपरिनिष्ठितः ॥ पुरा समागतो धर्मस्तीर्थयात्राचिकीर्षया ॥ २ ॥ आगत्य च चकारोच्चै र्यात्रां तत्रादरेण सः ॥ दृष्ट्वा माहात्म्यमतुलमयोध्यायाः सविस्मयः ॥ ३ ॥ विधाय स्वभुजावूर्ध्वौ विप्रोऽवोचन्मुदान्वितः ॥ अहो रम्यमिदं तीर्थमहो माहात्म्यमुत्तमम् ॥ ४ ॥ अयोध्यासदृशी कापि दृश्यते नापरा पुरी ॥ या न स्पृशति वसुधां विष्णुचक्रस्थिताऽनिशम् ॥ ५ ॥ यस्यां स्थितो हरिः साक्षात्सेयं केनोपमीयते ॥ अहो तीर्थानि सर्वाणि

स्थित कलिपापनाशक धर्महरि नामक देवजी हैं ॥ १ ॥ पुरातन समय वेदों व वेदाङ्गों के तत्त्व के ज्ञाता अपने कर्म में स्थित धर्म तीर्थयात्रा करने की इच्छा से आये ॥ २ ॥ और वहां आकर उन्होंने आदर से तीर्थयात्रा किया व अयोध्या का अतुल माहात्म्य देखकर विस्मयसमेत ॥ ३ ॥ व हर्षसंयुत ब्राह्मण ने अपनी भुजाओं को ऊपर करके कहा कि अहो यह उत्तम तीर्थ है व उत्तम माहात्म्य को आश्चर्य है ॥ ४ ॥ अयोध्या के समान कोई दूसरी पुरी नहीं देख पड़ती है विष्णु-चक्र में सदैव स्थित जो पृथ्वी को नहीं स्पर्श करती है ॥ ५ ॥ जिसमें साक्षात् विष्णुजी स्थित हैं वह यह पुरी किससे उपमा दीजावै आश्चर्य है कि जिसमें

सब तीर्थ विष्णुलोक के दायक हैं ॥ ६ ॥ विष्णु आश्चर्यमय व तीर्थ आश्चर्यरूप और अयोध्या महापुरी आश्चर्यमयी है व अतुल माहात्म्य आश्चर्यमय है यहां स्थित कौन वस्तु प्रशंसा के योग्य नहीं है ॥ ७ ॥ यह कहकर बड़े हर्ष से संयुत उस धर्म ने अयोध्या का विशेष कर माहात्म्य देखकर बहुत नृत्य किया ॥ ८ ॥ उस धर्म को उस प्रकार नाचते हुए देखकर दयासंयुत पीतवसनधारी भगवान् विष्णुजी आपही प्रकट हुए धर्म ने उन विष्णुजी को प्रणाम करके आदर से स्तुति किया ॥ ९ ॥ (धर्म बोले) कि क्षीरसागरनिवासी के लिये प्रणाम है व पर्यङ्कशायी के लिये नमस्कार है व शंकरजी से स्पर्श किये हुए दिव्य चरणों

विष्णुलोकप्रदानि वै ॥ ६ ॥ अहो विष्णुरहो तीर्थमयोध्याऽहो महापुरी ॥ अहो माहात्म्यमतुलं किं न श्लाघ्य मिहास्थितम् ॥ ७ ॥ इत्युक्त्वा तत्र बहुशो ननर्त प्रमदाकुलः ॥ धर्मो माहात्म्यमालोक्य अयोध्याया विशेषतः ॥ ८ ॥ तं तथा नर्तमानं वै धर्मं दृष्ट्वा कृपान्वितः ॥ आविर्बभूव भगवान्पीतवासा हरिः स्वयम् ॥ तं प्रणम्य च धर्मोऽथ तुष्टाव हरिमादरात् ॥ ९ ॥ धर्म उवाच ॥ नमः क्षीराब्धिवासाय नमः पर्यङ्कशायिने ॥ नमः शङ्करसंस्पृष्टदिव्यपादाय विष्णवे ॥ १० ॥ भक्त्यार्चितसुपादाय नमोऽजादिप्रियाय ते ॥ शुभाङ्गाय सुनेत्राय माधवाय नमो नमः ॥ ११ ॥ नमोऽरविन्दपादाय पद्मनाभाय वै नमः ॥ नमः क्षीराब्धिकल्लोलस्पृष्टगात्राय शार्ङ्गिणे ॥ १२ ॥ ॐनमो योगनिद्राय योगर्क्षैर्भावितात्मने ॥ तार्क्ष्यासनाय देवाय गोविन्दाय नमोनमः ॥ १३ ॥ सुकेशाय सुनासाय सुललाटाय चक्रिणे ॥ सुवस्त्राय सुवर्णाय श्रीधराय नमोनमः ॥ १४ ॥ सुबाहवे नमस्तुभ्यं चारुजङ्घाय ते नमः ॥ सुवासाय सुदिव्याय सुवि

वाले विष्णु के लिये प्रणाम है ॥ १० ॥ भक्ति से उत्तम पूजित चरणवाले ब्रह्मादिप्रिय तुम्हारे लिये प्रणाम है उत्तम अंग व उत्तम नेत्रोंवाले माधवजी के लिये बार बार प्रणाम है ॥ ११ ॥ कमलचरण व कमलनाभिवाले के लिये प्रणाम है और क्षीरसागर की लहरियों से स्पर्श किये हुए अंगोंवाले शार्ङ्गधारी के लिये प्रणाम है ॥ १२ ॥ योगनिद्रावाले व योगनक्षत्रों से पवित्र चित्त के लिये प्रणाम है और गरुड़गामी गोविन्द देवजी के लिये प्रणाम है ॥ १३ ॥ सुन्दर केश व सुन्दर नासिका तथा सुन्दर मस्तकवाले चक्रधारी के लिये और सुन्दर वस्त्र व सुन्दर वर्णवाले श्रीधर के लिये प्रणाम है प्रणाम है ॥ १४ ॥ सुभुज व सुन्दर

जंघावाले आपके लिये प्रणाम है और सुन्दर वस्त्र, सुदिव्य व सुन्दरी विद्यावाले गदाधारी के लिये प्रणाम है ॥ १५ ॥ व केशव, शान्त तथा वामनजी के लिये प्रणाम है प्रणाम है और धर्मप्रिय पीतवसनवाले देवके लिये नमस्कार है ॥ १६ ॥ अगस्त्यजी बोले कि धर्म से इस प्रकार स्तुति किये हुए उदारबुद्धिवाले श्रीपति विष्णुजी प्रसन्न होकर धर्म से बोले ॥ १७ ॥ (श्रीभगवान् बोले) कि हे सुव्रत, धर्मज्ञ, धर्म ! इस स्तोत्र से मैं आपसे प्रसन्न होगया तुमको जो मन को प्रिय हो उस वर को मांगिये ॥ १८ ॥ निरालसी जो मनुष्य इस स्तोत्र से मेरी स्तुति करता है वह सब मनोरथों को पाता है और लक्ष्मीसंयुत सदैव पूजित होता है ॥ १९ ॥ धर्म बोले

द्याय गदाभृते ॥ १५ ॥ केशवाय च शान्ताय वामनाय नमोनमः ॥ धर्मप्रियाय देवाय नमस्ते पीतवाससे ॥ १६ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ इति स्तुतो जगन्नाथो धर्मेण श्रीपतिर्मुदा ॥ उवाच स हृषीकेशः प्रीतो धर्ममुदारधीः ॥ १७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ तुष्टोऽहं भवतो धर्म स्तोत्रेणानेन सुव्रत ॥ वरं वरय धर्मज्ञ यस्ते स्यान्मनसः प्रियः ॥ १८ ॥ स्तोत्रेणानेन यः स्तौति मानवो मामतन्द्रितः ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति पूजितः श्रीयुतः सदा ॥ १९ ॥ धर्म उवाच ॥ यदि तुष्टोसि भगवन्देवदेव जगत्पते ॥ त्वामहं स्थापयाम्यत्र निजनाम्ना जगद्गुरो ॥ २० ॥ अगस्त्य उवाच ॥ एवमस्त्विति संप्रोच्याभवद्धर्महरिर्विभुः ॥ स्मरणादेव मुच्येत नरो धर्महरेर्विभोः ॥ २१ ॥ सरयूसलिले स्नात्वा सुचिन्ताकुलमानसः ॥ देवं धर्महरिं पश्येत्सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २२ ॥ अत्र दानं तथा होमं जपो ब्राह्मणभोजनम् ॥ सर्वमक्षयतां याति विष्णुलोके निवासकृत् ॥ २३ ॥ अज्ञानाज्ज्ञानतो वापि यत्किञ्चिद्दुष्कृतं भवेत् ॥ प्रायश्चित्तं विधातव्यं

कि हे जगत्पते, जगद्गुरो, भगवन्, देवदेव ! यदि तुम प्रसन्न हो तो मैं यहां तुमको अपने नाम से स्थापित करता हूं ॥ २० ॥ अगस्त्यजी बोले कि ऐसाही हो यह कहकर धर्महरि हुए व्यापक धर्महरिजी के स्मरणही से मनुष्य मुक्त होजाता है ॥ २१ ॥ बहुत चिन्ता से विकलमनवाला मनुष्य सरयू के जल में नहाकर धर्महरि को देखै तो सब पातकोंसे छूट जाता है ॥ २२ ॥ यहां दान, होम, जप, ब्राह्मणभोजन सब अक्षयता को प्राप्त होताहै और विष्णुलोकमें बसता है ॥ २३ ॥ अज्ञान व

ज्ञान से जो कुछ पाप होवै उसके नाश के लिये बड़े यत्न से प्रायश्चित्त करना चाहिये ॥ २४ ॥ क्योंकि प्रायश्चित्तविधि से उसका पाप नाश होजाता है इसलिये यहां विधि से प्रायश्चित्त करना चाहिये ॥ २५ ॥ और अज्ञान से व ज्ञान से तथा राजा आदिके दण्ड से जिस पराधीनपुरुष के नित्यकर्मों की निवृत्ति होवै उसको भी बड़े यत्न से यहां प्रायश्चित्त करना चाहिये ॥ २६ ॥ यहां आदरसमेत साक्षात् विष्णुदेवजी बसते हैं इसलिये मनुष्यों से इसकी महिमा नहीं कही जासक्ती है ॥ २७ ॥ हे द्विजोत्तम ! आषाढ़ के शुक्लपक्ष की एकादशी में विधि से उसकी वार्षिकी यात्रा करना चाहिये ॥ २८ ॥ स्वर्गद्वार में मनुष्य नहाकर धर्महरि विभु

तन्नाशाय प्रयत्नतः ॥ २४ ॥ प्रायश्चित्तेन विधिना पापं तस्य प्रणश्यति ॥ तस्मादत्र प्रकर्तव्यं प्रायश्चित्तं विधानतः ॥ २५ ॥ अज्ञानाज्ज्ञानतो वापि राजादेर्निग्रहात्तथा ॥ नित्यकर्मनिवृत्तिः स्याद्यस्य पुंसोऽवशात्मनः ॥ तेनाप्यत्र विधातव्यं प्रायश्चित्तं प्रयत्नतः ॥ २६ ॥ अत्र साक्षात्स्वयं देवो विष्णुर्वसति सादरः ॥ तस्माद्वर्णयितुं शक्यो महिमा न हि मानवैः ॥ २७ ॥ आषाढे शुक्लपक्षस्य एकादश्यां द्विजोत्तम ॥ तस्य सांवत्सरी यात्रा कर्तव्या तु विधानतः ॥ २८ ॥ स्वर्गद्वारे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा धर्महरिं विभुम् ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा विष्णुलोके वसेत्सदा ॥ २९ ॥ तस्माद्दक्षिणदिग्भागे स्वर्णस्य खनिरुत्तमा ॥ यत्र चक्रे स्वर्णवृष्टिं कुबेरो रघुजाद्भयात् ॥ ३० ॥ व्यास उवाच ॥ भगवन्ब्रूहि तत्त्वज्ञ स्वर्णवृष्टिरभूत्कथम् ॥ कुबेरस्य कथं भीतिरुत्पन्ना रघुभूपतेः ॥ ३१ ॥ एतत्सर्वं समाचक्ष्व विस्तरान्मम सुव्रत ॥ श्रुत्वा कथारहस्यानि न तृप्यति मनो मम ॥ ३२ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ शृणु विप्र प्रवक्ष्यामि स्वर्णस्यो

को देखकर सब पापों से शुद्धचित्त होकर सदैव विष्णुलोक में बसता है ॥ २९ ॥ उससे दक्षिणदिशा के भाग में सोने की उत्तम खानि है जहां रघुजी से उत्पन्न भय से कुबेरजी ने सुवर्ण की वृष्टि की है ॥ ३० ॥ व्यासजी बोले कि हे भगवन्, तत्त्वज्ञ ! सोने की वृष्टि कैसे हुई यह कहिये और राजा रघु से कुबेर को कैसे भय उत्पन्न हुआ ॥ ३१ ॥ हे सुव्रत ! यह सब मुझसे विस्तार से कहिये कथा के चरित्रों को सुनकर मेरा मन तृप्त नहीं होता है ॥ ३२ ॥ अगस्त्यजी बोले कि हे विप्र ! सुनिये

मैं सोने की उत्तम उत्पत्ति को कहूंगा जिसके सुनने से मनुष्यों को बड़ा आश्चर्य होता है ॥ ३३ ॥ पुरातनसमय इक्ष्वाकु के वंश को बढ़ानेवाले रघुपति रघुजी अपने उदार भुजबल से पृथ्वी के पालक हुए ॥ ३४ ॥ और प्रताप से शत्रुवर्ग को सन्तप्तकारक व प्रसिद्ध उत्तम यशवाले हुए हैं प्रजाओं को भलीभांति पालन करनेवाले उन सज्जन नीतिमान् रघु से ॥ ३५ ॥ यश से पूर्ण श्वेत कान्ति से दशोदिशा लिप्त होगईं और विजय के क्रम से उन्होंने बड़ा ऐश्वर्य साधन किया है ॥ ३६ ॥ व अनेक देशों को आक्रमण करके चतुरङ्गिणी सेनासमेत उन्होंने प्राणियों को वश करके दण्ड से धन लेलिया है ॥ ३७ ॥ उस समय अत्यन्त

त्पत्तिमुत्तमाम् ॥ यस्य श्रवणतो नृणां जायते विस्मयो महान् ॥ ३३ ॥ आसीत्पुरा रघुपतिरिक्ष्वाकुकुलवर्धनः ॥ रघुर्निजभुजोदारवीर्यशासितभूतलः ॥ ३४ ॥ प्रतापतापितारातिवर्गोव्याख्यातसद्यशाः ॥ प्रजाः पालयता सम्यक्तेन नीतिमता सता ॥ ३५ ॥ यशः पूरेण संलिप्ता दिशो दश सितत्विषा ॥ स चक्रे प्रौढविभवसाधनं विजयक्रमात् ॥ ३६ ॥ नानादेशान्समाक्रम्य चतुरङ्गबलान्वितः ॥ भूतानि वशमानीय वसु जग्राह दण्डतः ॥ ३७ ॥ उत्कृष्टान्नृपतीन्वीरो दण्डयित्वा बलाधिकान् ॥ रत्नानि विविधान्याशु जग्राहातिबलस्तदा ॥ ३८ ॥ स विजित्य दिशः सर्वा गृहीत्वा रत्न संचयम् ॥ अयोध्यामागतो राजा राजधानीं च तां शुभाम् ॥ ३९ ॥ तत्रागत्य च काकुत्स्थो यज्ञायोत्सुकमानसः ॥ चकार निर्मलां बुद्धिं निजवंशोचितक्रियाम् ॥ ४० ॥ वसिष्ठं मुनिमाज्ञाय वामदेवं च कश्यपम् ॥ ४१ ॥ अन्यानपि मुनिश्रेष्ठान्नानातीर्थसमाश्रितान् ॥ समानयद्विनीतेन द्विजवर्येण भूपतिः ॥ ४२ ॥ दृष्ट्वा स्थितान्स तान्सर्वान्प्रदीप्ता

बलवान् व वीर उन्होंने अधिक पराक्रमी बड़े बड़े राजाओं से दण्ड लेकर अनेक प्रकार के रत्नों को शीघ्रही ले लिया ॥ ३८ ॥ वह राजा सब दिशाओं को जीतकर रत्नसमुदाय लेकर उस उत्तम अयोध्या राजधानी को आये ॥ ३९ ॥ वहां आकर यज्ञ के लिये उत्कण्ठित मनवाले काकुत्स्थ रघुजी ने अपने वंश के योग्य कर्म वाली निर्मल बुद्धि को किया ॥ ४० ॥ वसिष्ठ मुनि से आज्ञा लेकर वामदेव व कश्यप ॥ ४१ ॥ तथा अनेक तीर्थों में टिके हुए अन्यभी श्रेष्ठ मुनियों को राजा ने विनीत द्विजोत्तम वसिष्ठ जी से प्राप्त कराया ॥ ४२ ॥ जलती हुई अग्नि के समान उन सब मुनियों को देखकर व उनको आये हुए जानकर शत्रुपुर को जीतने

वाले बड़े यशस्वी रघुजी यथायोग्य आपही निकले ॥ ४३ ॥ तदनन्तर नम्र के समान रघुजी ने सब द्विजोत्तमों से यज्ञ की सिद्धि के लिये धर्मसंयुत वचन कहा ॥ ४४ ॥ (रघु बोले) कि आप सब लोग मेरा वचन सुनिये कि मैं यज्ञ करना चाहता हूं उसमें मुझको आज्ञा देने के योग्य हो ॥ ४५ ॥ हे मुनिसत्तमो ! इस समय मुझको कौन यज्ञ योग्य है हे मुनीश्वरो ! तुमलोग इसको यथार्थ विचार कर कहो ॥ ४६ ॥ मुनि लोग बोले कि हे राजन् ! यज्ञों के मध्य में विश्वजित् नामक यज्ञ उत्तम है इस समय उसको यत्न से कीजिये वृथा विलम्ब मत कीजिये ॥ ४७ ॥ अगस्त्यजी बोले कि तदनन्तर राजा ने अनेक सामग्रियों से संयुत व सर्वस्व दक्षिणा

त्विव पावकान् ॥ तानागतान्विदित्वाथ रघुः परपुरंजयः ॥ निश्चक्राम यथान्यायं स्वयमेव महायशाः ॥ ४३ ॥ ततो विनीतवत्सर्वान्काकुत्स्थो द्विजसत्तमान् ॥ उवाच धर्मयुक्तं च वचनं यज्ञसिद्धये ॥ ४४ ॥ रघुरुवाच ॥ मुनयः सर्व एवैते यूयं शृणुत मद्वचः ॥ यज्ञं विधातुमिच्छामि तत्राज्ञां दातुमर्हथ ॥ ४५ ॥ सांप्रतं मम को यज्ञो युक्तः स्यान्मुनिसत्तमाः ॥ एतद्विचार्य तत्त्वेन ब्रूत यूयं मुनीश्वराः ॥ ४६ ॥ मुनय ऊचुः ॥ राजन्विश्वजिदाख्यातो यज्ञानां यज्ञ उत्तमः ॥ सांप्रतं कुरु तं यत्नान्मा विलम्बं वृथा कृथाः ॥ ४७ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ नृपश्चक्रे ततो यज्ञं विश्वदिग्जयसंज्ञितम् ॥ नानासंभारमधुरं कृतसर्वस्वदक्षिणम् ॥ ४८ ॥ नानाविधेन दानेन मुनिसंतोषहर्षकृत् ॥ सर्वस्वमेव प्रददौ द्विजेभ्यो बहुमानतः ॥ ४९ ॥ तेषु विश्वेषु यातेषु पूजितेषु गृहान्स्वकान् ॥ बन्धुष्वपि च तुष्टेषु मुनिषु प्रणतेषु च ॥ ५० ॥ तेन यज्ञेन विधिवद्विहितेन नरेश्वरः ॥ शुशुभे शोभनाचारः स्वर्गे देवेन्द्रवत्क्षणात् ॥ ५१ ॥ तत्रान्तरे समभ्यायान्मुनि

कृत, विश्वदिग्जयनामक यज्ञ को किया ॥ ४८ ॥ व अनेक भांति के दान से मुनियों का सन्तोष किया और ब्राह्मणों के लिये बहुत आदर से सब धन दे दिया ॥ ४९ ॥ उन पूजित सबों के अपने अपने घर जाने पर व बन्धुवों के प्रसन्न होने पर मुनियों को प्रणाम किया ॥ ५० ॥ व विधिपूर्वक किये हुए उस यज्ञ से उत्तम आचारवाले राजा रघु क्षण भर में स्वर्ग में इन्द्र के समान शोभित हुए ॥ ५१ ॥ उसी अवसर में यमवालों में श्रेष्ठ विश्वामित्र मुनि के शिष्य कौत्स

नामक मुनि गुरु की दक्षिणा के लिये उन राजा को पवित्र करने के लिये आये गुरुने हठ के कारण क्रोध से याचना किया कि शीघ्रही चौदह करोड़ अशर्फी मेरी दक्षिणा ले आवो तदनन्तर सब कुछ दक्षिणा दिये हुए नृपति शिरोमणि रघुजी से आदर से मांगने के लिये वह कौत्स मुनि आये ॥ ५२ । ५३ । ५४ ॥ उन को आये हुए जानकर उस समय परन्तप उन रघुजी ने उठकर विधिपूर्वक पूजन किया उनका सब पूजन मिट्टी के पात्र से कार्यकारक हुआ ॥ ५५ ॥ वैसी उस पूजा की सामग्री को देखकर विस्मित हुए व वाक्य के ज्ञान में चतुर मुनिनायकजी ने आनन्दरहित होकर दक्षिणा की आशा को छोड़ते हुए यह मधुर वचन

र्यनवतां वरः ॥ विश्वामित्रमुनेरन्तेवासी कौत्स इति स्मृतः ॥ ५२ ॥ दक्षिणार्थं गुरोर्धीमान्पावितुं तं नरेश्वरम् ॥ चतुर्दश सुवर्णानां कोटीराहर सत्वरम् ॥ ५३ ॥ मद्दक्षिणेति गुरुणा निर्बन्धाद्याचितो रुषा ॥ आगतः स मुनिः कौत्सस्ततो याचितुमादरात् ॥ रघुं भूपालतिलकं दत्तसर्वस्वदक्षिणम् ॥ ५४ ॥ तमागतमभिप्रेत्य रघुरादरतस्तदा ॥ उत्थाय पूजयामास विधिवत्स परन्तपः ॥ सपर्यासीत्तस्य सर्वा मृत्पात्रविहितक्रिया ॥ ५५ ॥ पूजासंभारमालोक्य तादृशं तं मुनीश्वरः ॥ विस्मितोऽभून्निरानन्दो दक्षिणाशां परित्यजन् ॥ उवाच मधुरं वाक्यं वाक्यज्ञानविशारदः ॥ ५६ ॥ कौत्स उवाच ॥ राजन्नभ्युदयस्तेऽस्तु गच्छाम्यन्यत्र सांप्रतम् ॥ ५७ ॥ गुर्वर्थाहरणायैव दत्तसर्वस्वदक्षिणम् ॥ त्वां न याचे धनाभावादतोऽन्यत्र व्रजाम्यहम् ॥ ५८ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ इत्युक्तस्तेन मुनिना रघुः परपुरंजयः ॥ क्षणं ध्यात्वा ब्रवीदेनं विनयाद्विहिताञ्जलिः ॥ ५९ ॥ रघुरुवाच ॥ भगवंस्तिष्ठ मे हर्म्ये दिनमेकं मुनिव्रत ॥ यावद्यतिष्ये भगवन्भव

कहा ॥ ५६ ॥ (कौत्सजी बोले) कि हे राजन् ! तुम्हारा ऐश्वर्य होवै मैं इस समय अन्यत्र जाता हूं ॥ ५७ ॥ सब धन दक्षिणा दिये हुए तुम से धन के अभाव के कारण नहीं मांगता हूं इस कारण गुरु के लिये धन लाने के लिये मैं अन्यत्र जाता हूं ॥ ५८ ॥ उन मुनि से ऐसा कहे हुए शत्रुनगरों को जीतनेवाले रघुजी ने विनय से हाथों को जोड़ कर क्षणभर ध्यान करके इससे कहा ॥ ५९ ॥ (रघुजी बोले) कि हे मुनिव्रत, भगवन् ! मेरे घर में एक दिन तबतक ठहरिये जबतक

आपके धन के लिये मैं बड़ा यत्न करता हूं ॥ ६० ॥ अगस्त्यजी बोले कि मुनि से यह परम उदार वचन कहकर उदारबुद्धिवाले रघुजी वहां कुबेर को जीतने की इच्छा से चले ॥ ६१ ॥ प्रसन्न मनवाले उन रघुजी को कहेहुए वचनों से आते हुए जानकर सोने की अक्षय वृष्टि किया ॥ ६२ ॥ जहां सोने की वृष्टि हुई वहां वह उत्तम सोने की खानि हुई और उनसे निवेदन की हुई खानि को उन रघुजी ने मुनि को दिखलाया ॥ ६३ ॥ व रघुजी ने उस उत्तम खानि को उन कौत्सजी के लिये समर्पण किया तदनन्तर मुनीन्द्र कौत्स ने भी गुरु के लिये धन को आदर से लेकर ॥ ६४ ॥ गुणों से अधिक कौत्सजी ने अन्य सब सुवर्ण को राजा के लिये

दर्थार्थमुत्सुकैः ॥ ६० ॥ अगस्त्य उवाच ॥ इत्युक्त्वा परमोदारवचो मुनिमुदारधीः ॥ प्रतस्थे च रघुस्तत्र कुबेरविजिगीषया ॥ ६१ ॥ तमायान्तं कुबेरोऽथ विज्ञाप्य वचनोदितैः ॥ प्रसन्नमनसं चक्रे वृष्टिं स्वर्णस्य चाक्षयाम् ॥ ६२ ॥ स्वर्णवृष्टिरभूद्यत्र सा स्वर्णखनिरुत्तमा ॥ स मुनिं दर्शयामास खनिं तेन निवेदिताम् ॥ ६३ ॥ तस्मै समर्पयामास तां रघुः खनिमुत्तमाम् ॥ मुनीन्द्रोऽपि गृहीत्वाशु ततो गुर्वर्थमादरात् ॥ ६४ ॥ राज्ञे निवेदयामास सर्वमन्यद्गुणाधिकः ॥ वरानथ ददौ तुष्टः कौत्सो मतिमतां वरः ॥ ६५ ॥ कौत्स उवाच ॥ राजँल्लभस्व सत्पुत्रं निजवंशगुणान्वितम् ॥ इयं स्वर्णखनिस्तूर्णं मनोभीष्टफलप्रदा ॥ ६६ ॥ भूयादत्र परं तीर्थं सर्वपापहरं सदा ॥ अत्र स्नानेन दानेन नृणां लक्ष्मीः प्रजायते ॥ ६७ ॥ वैशाखे शुक्लद्वादश्यां यात्रा सांवत्सरी स्मृता ॥ नानाभीष्टफलप्राप्तिर्भूयान्मद्वचसा नृणाम् ॥ ६८ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ इति दत्त्वा वरान्राज्ञे कौत्सः सन्तुष्टमानसः ॥ प्रतस्थे निजकार्यार्थे गुरोराश्रममुत्सुकः ॥ ६९ ॥

निवेदन किया इसके उपरान्त बुद्धिमानों में श्रेष्ठ कौत्सजी ने प्रसन्न होकर वरों को दिया ॥ ६५ ॥ कौत्सजी बोले कि हे राजन्! अपने वंश के गुणों से संयुत उत्तम पुत्र को पावो और यह सुवर्ण की खानि शीघ्रही मनोरथ के फल को देवै ॥ ६६ ॥ यहां सदैव सब पापों को हरनेवाला उत्तम तीर्थ होवै यहां स्नान व दान से मनुष्यों के लक्ष्मी होती है ॥ ६७ ॥ वैशाख में शुक्लपक्ष की द्वादशी में वार्षिकी यात्रा कही गई है मेरे वचन से मनुष्यों को अनेक मनोरथों के फल की प्राप्ति होती है ॥६८॥ अगस्त्यजी बोले कि राजा के लिये इस प्रकार वरों को देकर अपने कार्य के लिये उत्कण्ठित व प्रसन्न मनवाले कौत्सजी गुरु के आश्रम को चले ॥६९॥

इसके उपरान्त कृतार्थ राजा ने उस शेष धन को इकट्ठा करके विधिपूर्वक ब्राह्मणों के लिये देकर प्रजाओं को पालन किया ॥ ७० ॥ इस प्रकार मुनीश्वर कौत्सजी से स्वर्णखानि का माहात्म्य हुआ है ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतेऽयोध्यामाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे धर्महरिस्वर्णखनिमाहात्म्यवर्णनंनाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

दो० । जिमि तिलोदकी नदी कर है अति अतुल प्रभाव । सो पञ्चम अध्याय में वर्णित चरित सुहाव ॥ व्यासजी बोले कि हे भगवन् ! यथार्थ कहिये कि

राजा स कृतकृत्योऽथ शेषं संगृह्य तद्धनम् ॥ द्विजेभ्यो विधिवद्दत्त्वा पालयामास वै प्रजाः ॥ ७० ॥ एवं स्वर्णखनेर्जातं माहात्म्यं च मुनीश्वरात् ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतेऽयोध्यामाहात्म्ये धर्महरिस्वर्णखनि माहात्म्यवर्णनंनाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

व्यास उवाच ॥ भगवन्ब्रूहि तत्त्वेन कथं निर्बन्धतो मुनिः ॥ विश्वामित्रो निजं शिष्यं कौत्सं क्रोधेन तादृशम् ॥ १ ॥ दुष्प्राप्यमर्थं यत्नेन बहु प्रार्थितवांस्तदा ॥ एतत्सर्वं च कथय मयि यद्यस्ति ते कृपा ॥ २ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ शृणु द्विज कथामेतां सावधानेन्द्रियः स्वयम् ॥ विश्वामित्रो मुनिश्रेष्ठः स दिव्यज्ञानलोचनः ॥ ३ ॥ निजाश्रमे तपो दुर्गं चकार प्रयतो व्रती ॥ एकदा तमथो द्रष्टुं दुर्वासा मुनिरागतः ॥ ४ ॥ आगत्य च क्षुधाक्रान्त उच्चैः प्रोवाच स द्विजः ॥

विश्वामित्र मुनि ने कैसे हठ से अपने शिष्य कौत्स से क्रोध से वैसे ॥ १ ॥ दुर्लभ धन को उस समय यत्न से बहुत प्रार्थना किया यह सब कहिये यदि मेरे ऊपर तुम्हारी कृपा है ॥ २ ॥ अगस्त्यजी बोले कि हे द्विज ! सावधानइन्द्रिय होकर इस कथा को सुनिये कि मुनिश्रेष्ठ वह विश्वामित्रजी दिव्य ज्ञान व दिव्य दृष्टि वाले थे ॥ ३ ॥ पवित्र होकर व्रतवान् विश्वामित्रजी ने अपने आश्रम में कठिन तप किया है इसके बाद एक समय उनको देखने के लिये दुर्वासा मुनि आये ॥ ४ ॥ भूख से विकल उन दुर्वासा द्विज ने आकर उच्च प्रकार से कहा कि क्षुधा से पीड़ित चित्तवाले मेरे लिये पवित्र व गरम खीर भोजन को क्षुधार्त

मेरे लिये शीघ्रही दीजिये ॥ ५ ॥ यह वचन सुनकर शीघ्रही विश्वामित्रजी ने यत्न से स्थाली में खीर को लेकर तदनन्तर आपही देकर स्थित हुए ॥ ६ ॥ उसको लेकर उठे हुए उन विश्वामित्रजी को देखते हुए लक्षण में परायण दुर्वासाजी ने विश्वामित्र मुनि से मधुर वचन कहा ॥ ७ ॥ कि हे द्विजेन्द्र ! क्षण भर क्षमा करिये जब तक नहाकर मैं आता हूं क्षण भर स्थित होवो मैं इसी समय आता हूं ॥ ८ ॥ यह कहकर वे दुर्वासाजी उस समय अपने आश्रम को गये ॥ ९ ॥ तब तपस्या में स्थित वे विश्वामित्रजी निश्चल शिखर के समान उस समय स्थिरबुद्धि होते हुए देवताओं के हज़ार वर्ष तक स्थित रहे ॥ १० ॥ परम

भोजनं दीयतां मह्यं क्षुधापीडितचेतसे ॥ पायसं शुचि चोष्णं च शीघ्रं क्षुधार्त्तिने द्विज ॥ ५ ॥ इति श्रुत्वा वचः क्षिप्रं विश्वामित्रः प्रयत्नतः ॥ स्थाल्यां पायसमादाय तं समर्प्य ततः स्वयम् ॥ ६ ॥ तदादायोत्थितं दृष्ट्वा दुर्वासा स्तं विलोकयन् ॥ उवाच मधुरं वाक्यं मुनिं लक्षणतत्परः ॥ ७ ॥ क्षणं सहस्व विप्रेन्द्र यावत्स्नात्वा व्रजाम्यहम् ॥ तिष्ठ तिष्ठ क्षणं तिष्ठ आगच्छाम्येष सांप्रतम् ॥ ८ ॥ इत्युक्त्वा स जगामैव दुर्वासाः स्वाश्रमं तदा ॥ ९ ॥ विश्वामित्र स्तपोनिष्ठस्तदा सानुरिवाऽचलः ॥ दिव्यं वर्षसहस्रं स तस्थौ स्थिरमतिस्तदा ॥ १० ॥ तस्य शुश्रूषणपरो मुनिः कौत्सो यतव्रतः ॥ बभूव परमोदारमतिर्विगतमत्सरः ॥ ११ ॥ पुनरागत्य स मुनिर्दुर्वासा गतकल्मषः ॥ भुक्त्वा च पायसं सद्यः स जगाम निजाश्रमम् ॥ १२ ॥ तस्मिन्गते मुनिवरे विश्वामित्रस्तपोनिधिः ॥ कौत्सं विद्यावतां श्रेष्ठं विससर्ज गृहान्प्रति ॥ १३ ॥ स विसृष्टो गुरुं प्राह दक्षिणा प्रार्थ्यतामिति ॥ विश्वामित्रस्तु तं प्राह त्वं किं दास्यसि

उदारबुद्धिवाले व मत्सररहित व्रत को ग्रहण किये हुए कौत्स मुनि उनकी सेवा में परायण हुए ॥ ११ ॥ फिर आकर वे पापरहित दुर्वासा मुनि खीर को खाकर शीघ्रही अपने आश्रम को चले गये ॥ १२ ॥ उन मुनिश्रेष्ठ के चले जाने पर तपोनिधि विश्वामित्रजी ने विद्वानों में श्रेष्ठ कौत्सजी को घर को बिदा किया ॥ १३ ॥ बिदा किये हुए उन कौतसजी ने गुरुसे कहा कि दक्षिणा मांगिये विश्वामित्र ने उससे कहा कि तुम क्या दक्षिणा दोगे हे यतव्रत ! तुम्हारी सेवा दक्षिणा

है घरको जाइये ॥ १४ ॥ जब हठ से शिष्य ने बार बार गुरुसे कहा तब बड़े कोधित गुरु ने शिष्य से निठुर वचन कहा ॥ १५ ॥ कि हे विप्र ! चौदह करोड़ अशर्फी मेरी दक्षिणा देवो पश्चात् घर को जाइये ॥ १६ ॥ गुरुसे ऐसा कहे हुए कौत्सजी विचार कर दिग्विजय करनेवाले रघु के समीप आये व गुरुदक्षिणा की प्रार्थना किया ॥ १७ ॥ हे मुनिवर ! तुम से यह कहा गया तुमने जो फिर पूछा इसके सिवा अन्य सुनिये मैं तुमसे उत्तम तीर्थ का कारण कहता हूं ॥ १८ ॥ उससे दक्षिण दिशा के भाग में सिद्धों से सेवित सङ्गम है जोकि पृथ्वी में तिलोदकी व सरयू के समागम से प्रसिद्ध है ॥ १९ ॥ हे महाभाग ! उसमें नहाकर

दक्षिणाम् ॥ दक्षिणा तव शुश्रूषा गृहं व्रज यतव्रत ॥ १४ ॥ पुनःपुनर्गुरुं प्राह शिष्यो निर्बन्धवान्यदा ॥ तदा गुरुर्गुरु क्रुद्धः शिष्यं प्राह च निष्ठुरम् ॥ १५ ॥ सुवर्णस्य सुवर्णस्य चतुर्दश समाहर ॥ कोटीर्मे दक्षिणा विप्र पश्चाद्गच्छ गृहं प्रति ॥ १६ ॥ इत्युक्तो गुरुणा कौत्सो विचार्य समुपागमत् ॥ काकुत्स्थं दिग्विजेतारं ययाचे गुरुदक्षिणाम् ॥ १७ ॥ इत्युक्तं ते मुनिवर त्वया पृष्टं हि यत्पुनः ॥ अतोऽन्यच्छृणु ते वच्मि तीर्थकारणमुत्तमम् ॥ १८ ॥ तस्माद्दक्षिणदिग्भागे संभेदः सिद्धसेवितः ॥ तिलोदकीसरय्वोश्च संगत्या भुवि संश्रुतः ॥ १९ ॥ तत्र स्नात्वा महाभाग भवन्ति विरजा नराः ॥ दशानामश्वमेधानां कृतानां यत्फलं भवेत् ॥ तदाप्नोति स धर्मात्मा तत्र स्नात्वा यतव्रतः ॥ २० ॥ स्वर्णादिकं च यो दद्याद्ब्राह्मणे वेदपारगे ॥ शुभां गतिमवाप्नोति अग्निवच्चैव दीप्यते ॥ २१ ॥ तिलोदकीसरय्वोश्च संगमे लोकविश्रुते ॥ दत्त्वान्नं च विधानेन न स भूयोऽभिजायते ॥ २२ ॥ उपवासं च यः कृत्वा विप्रान्सन्तर्पयेन्नरः ॥

मनुष्य पापरहित होते हैं दश अश्वमेध करने का जो फल होता है उसमें नहाकर व्रत को ग्रहण किये हुए धर्मात्मा मनुष्य उस फलको पाता है ॥ २० ॥ जो मनुष्य वेदों के पारगामी ब्राह्मण के लिये सुवर्ण आदि को देता है वह उत्तम गति को पाता है और अग्नि के समान प्रकाशित होता है ॥ २१ ॥ संसार में प्रसिद्ध तिलोदकी व सरयू के सङ्गम में विधि से अन्न को देकर वह फिर उत्पन्न नहीं होताहै ॥ २२ ॥ व जो मनुष्य उपास करके ब्राह्मणों को तृप्त करताहै वह पुरुष सौत्रा-

मणि यज्ञका फल पाता है ॥ २३ ॥ वहां व्रत को ग्रहण करके जो एक बार भोजन करनेवाला मनुष्य महीने भर स्थित होता है उसका जीवनपर्यन्त किया हुआ पाप यकायक नाश होजाता है ॥ २४ ॥ भादौं की कृष्णपक्ष की अमावस में वार्षिकी यात्रा होती है रामजी ने पहले दूसरे समुद्र के समान नदी को निर्माण किया है ॥ २५ ॥ हे सुव्रत ! सिन्धु में उत्पन्न अश्वों के जल पीने के लिये जिसलिये सदैव उसमें तिल के समान श्याम जल शोभित होता है ॥ २६ ॥ उस कारण पवित्र जलवाली वह तिलोदकी ऐसी नदी सदैव प्रसिद्ध है जिस तिलोदकी में पवित्र व्रतवाला मनुष्य संगम से अन्यत्र नहाकर सात जन्मों में इकट्ठा किये

सौत्रामणेश्च यज्ञस्य फलमाप्नोति मानवः ॥ २३ ॥ एकाहारस्तु यस्तिष्ठेन्मासं तत्र यतव्रतः ॥ यावज्जीवकृतं पापं सहसा तस्य नश्यति ॥ २४ ॥ नभस्यकृष्णामावस्यां यात्रा सांवत्सरी भवेत् ॥ रामेण निर्मिता पूर्वं नदी सिन्धुरिवापरा ॥ २५ ॥ सिन्धुजानां तुरङ्गाणां जलपानाय सुव्रत ॥ तिलवच्छ्यामसुदकं यतस्तस्यां सदा बभौ ॥ २६ ॥ तिलोदकीति विख्याता पुण्यतोया सदा नदी ॥ संगमादन्यतो यस्यां तिलोदक्यां शुचिव्रतः ॥ स्नातो विमुच्यते पापैः सप्तजन्मार्जितैरपि ॥ २७ ॥ तस्मात्तिलोदकीस्नानं सर्वपापहरं मुने ॥ कर्त्तव्यं सुप्रयत्नेन प्राणिभिर्धर्मकाङ्क्षिभिः ॥ स्नानं दानं व्रतं होमं सर्वमक्षयतां व्रजेत् ॥ २८ ॥ इति विविधविधानैस्तीर्थयात्रां क्रमेण प्रथितगुणविकासः प्राप्तपुण्यो विधाय ॥ हरिमुपहृतभावः पूजयन्सर्वतीर्थं व्रजति परमधाम न्यस्तपापः कथञ्चित् ॥ २९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतेऽयोध्यामाहात्म्ये तिलोदकीप्रभाववर्णनंनाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ * ॥

हुए पापों से छूट जाता है ॥ २७ ॥ इसलिये हे मुने ! समस्त पापहारक तिलोदकी का स्नान धर्म चाहनेवाले प्राणियों को उत्तम यत्न से करना चाहिये स्नान, दान, व्रत व होम सब अक्षय होता है ॥ २८ ॥ इस प्रकार प्रफुल्लित प्रसिद्ध गुणोंवाला पुण्य को प्राप्त मनुष्य क्रम से अनेक प्रकार की विधियों से तीर्थयात्रा करके समस्त तीर्थरूप विष्णुको पूजकर पापरहित होकर किसी प्रकार परमधाम को प्राप्त होता है ॥ २९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डान्तर्गतेऽयोध्यामाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे तिलोदकीप्रभाववर्णनंनाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

दो०। गोप्रतार इमि घाट कर है जिमि अतुल प्रभाव। सोइ छठे अध्याय में कह्यो चरित सरसाव॥ अगस्त्यजी बोले कि हे विप्र! उस संगम से पश्चिम दिशा के तट में सब कामनाओं के फल को देनेवाला सीताकुण्ड ऐसा प्रसिद्ध तीर्थ स्थित है॥ १॥ हे विप्र! जिसमें नहाकर मनुष्य सब पापों से छूटजाता है सीताजी ने उस कुण्ड को आपही निर्माण किया है और श्रीरामजी ने वरदान से महाफलों का निधान किया॥ २॥ श्रीरामजी बोले कि हे सुभगे, सीते! सुनिये पृथ्वी में तुम्हारे इस कुण्ड का माहात्म्य जैसा प्रसिद्ध है तुम्हारी प्रीति से मैं कहता हूं॥ ३॥ हे शुचिस्मिते! इसमें विधि से स्नान, दान, जप व होम सब

अगस्त्य उवाच॥ तस्मात्संगमतो विप्र पश्चिमे दिक्तटे स्थितम्॥ सीताकुण्डमिति ख्यातं सर्वकामफलप्रदम्॥ १॥ यत्र स्नात्वा नरो विप्र सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ सीतया किल तत्कुण्डं स्वयमेव विनिर्मितम्॥ रामेण वरदानाच्च महाफलनिधीकृतम्॥ २॥ श्रीराम उवाच॥ शृणु सीते प्रवक्ष्यामि माहात्म्यं भुवि यादृशम्॥ त्वत्कुण्डस्यास्य सुभगे त्वत्प्रीत्या कथयाम्यहम्॥ ३॥ अत्र स्नानं च दानं च जपो होमस्तपोऽथवा॥ सर्वमक्षयतां याति विधानेन शुचिस्मिते॥ ४॥ मार्गकृष्णचतुर्दश्यां तत्र स्नानं विशेषतः॥ सर्वपापहरं देवि सर्वदा स्नायिनां नृणाम्॥ ५॥ इति रामो वरं प्रादात्सीतायै च प्रजाप्रियः॥ तदाप्रभृति सर्वत्र तत्तीर्थं भुवि वर्त्तते॥ ६॥ सीताकुण्डमिति ख्यातं जनानां परमाद्भुतम्॥ तस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा नूनं राममवाप्नुयात्॥ ७॥ तत्र स्नानेन दानेन तपसा च विशेषतः॥ गन्धैर्माल्यैर्धूपदीपैर्नानाविभवविस्तरैः॥ रामं संपूज्य सीतां च मुक्तः स्यान्नात्र संशयः॥ ८॥ मार्गे मासि

अक्षय होवै॥ ४॥ व हे देवि! अगहन के कृष्णपक्ष की चौदसि में सदैव नहानेवाले मनुष्यों का स्नान समस्त पापों का नाशक हो॥ ५॥ प्रजाओं के प्यारे श्रीरामजी ने सीता के लिये यह वर दिया है तबसे लगाकर वह तीर्थ सब कहीं पृथ्वी में वर्तमान है॥ ६॥ सीताकुण्ड ऐसा प्रसिद्ध तीर्थ मनुष्यों को बड़ा अद्भुत है उस तीर्थ में नहाकर मनुष्य निश्चय कर श्रीरामजी को पाता है॥ ७॥ उसमें स्नान, दान व विशेष कर तपसे व चन्दन, माला, धूप, दीप तथा अनेक भांति के विभव विस्तारों से श्रीराम व सीताजी को पूजकर मनुष्य मुक्त होजाता है इसमें सन्देह नहीं है॥ ८॥ अगहन महीने में नहाना चाहिये क्योंकि गर्भवास नहीं

होता है अन्य समय में भी नहाकर वह मनुष्य विष्णुलोक को जाताहै ॥ ९ ॥ हे विप्र ! विभु विष्णु हरिजी के सुन्दर पश्चिम दिशा के तट में चक्रहरि नामक देवजी सब मनोरथों के फल को देते हैं ॥ १० ॥ हे विप्र ! उस चक्रहरि की महिमा बुद्धिमानों में श्रेष्ठ पण्डित जनों से भी नहीं कही जासक्ती है ॥ ११ ॥ उसके पश्चिम दिशा के भाग में नाम से हरिस्मृति ऐसा विष्णुजी का मन्दिर परमार्थ फल को देनेवाला प्रसिद्ध है जिसके दर्शनही से मनुष्य सब पापों से छूट जाता है ॥ १२ ॥ उन दोनों के दर्शन से जो मनुष्य पृथ्वी में जितने पाप करते हैं उन प्राणियों के वे पाप नाश होजाते हैं ॥ १३ ॥ पुरातन समय बड़े दारुण देवासुरसंग्राम होने

च स्नातव्यं गर्भवासो न जायते ॥ अन्यदापि नरः स्नात्वा विष्णुलोकं स गच्छति ॥ ९ ॥ विभोर्विष्णुहरेर्विप्र रम्ये पश्चिमदिक्तटे ॥ देवश्चक्रहरिर्नाम सर्वाभीष्टफलप्रदः ॥ १० ॥ तस्य चक्रहरेर्विप्र महिमा न हि मानवैः ॥ शक्यो वर्णयितुं धीरैरपि बुद्धिमतां वरैः ॥ ११ ॥ ततः पश्चिमदिग्भागे नाम्ना पुण्यं हरिस्मृति ॥ विष्णोरायतनं ख्यातं परमार्थफलप्रदम् ॥ यस्य दर्शनमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १२ ॥ तयोर्दर्शनतो यान्ति तेषां पापानि देहिनाम् ॥ तानि पापानि यावन्ति कुर्वते भुवि ये नराः ॥ १३ ॥ पुरा देवासुरे जाते संग्रामे भृशदारुणे ॥ दैत्यैर्वरमदोत्सिक्तैर्देवा युधि पराजिताः ॥ १४ ॥ तेषां पलायमानानां देवानामग्रणीर्हरः ॥ संस्तभ्य चैव तान्सर्वान्पुरस्कृत्याम्बुजासनम् ॥ १५ ॥ क्षीरोदशायिनं विष्णुं शेषपर्य्यङ्कशायिनम् ॥ लक्ष्म्योपविष्टं पार्श्वे च चरणाम्बुजहस्तया ॥ १६ ॥ नारदाद्यैर्मुनिवरैरुद्गीतगुणगौरवम् ॥ गरुडेन पुरःस्थेनानिशमञ्जलिना स्तुतम् ॥ १७ ॥ क्षीराब्धिजलकल्लोलमद

पर वरदान के मद से गर्वित दैत्यों ने युद्धमें देवताओं को पराजित किया ॥ १४ ॥ उन देवताओं के भागते हुए अग्रगामी शिवजी उन सबों को रोककर ब्रह्मा को आगे करके स्तुति करनेलगे ॥ १५ ॥ क्षीरसागर में शयन करनेवाले शेषरूपी पलँग में सोनेवाले विष्णुजी के समीप चरणकमल को हाथ में लिये हुए लक्ष्मी जी बैठी थीं ॥ १६ ॥ व नारदादिक मुनीश्वर गुणों का गौरव गान करते थे और आगे स्थित गरुड़जी सदैव हाथों को जोड़े स्तुति करते थे ॥ १७ ॥ व क्षीरसागर

के जल की लहरियों के बूंद से जिनके वस्त्र चिह्नित थे और नक्षत्रसमूह के समान चमकते हुए तार हार से शोभित थे ॥ १८ ॥ पीताम्बरधारी व अत्यन्त मुसक्यान के प्रकाश से संयुत तथा कानों से मोती के समान उज्ज्वल स्थूल कुण्डल को धारण किये थे ॥ १९ ॥ श्वेतद्वीप में रहनेवाली स्वच्छ रत्नवल्ली के समान पद्मरागों का किरीट व कुण्डल धारण किये थे ॥ २० ॥ राहु के डर से लौटे हुए अन्य सूर्य के समान व कौस्तुभ प्रभा समुदाय समेत मूंगा के समान अरुण वर्ण को धारण किये ॥ २१ ॥ चतुरानन की उत्पत्ति के दूसरे संकल्प के समान उन विष्णुजी की स्तुति करते हुए नम्र चित्त वे शीघ्रही शरण में गये ॥ २२ ॥

बिन्द्वङ्किताम्बरम् ॥ तारकोत्करविस्फारतारहारविराजितम् ॥ १८ ॥ पीताम्बरमतिस्मेरविकाशद्भावभावितम् ॥ बिभ्रतं कुण्डलं स्थूलं कर्णाभ्यां मौक्तिकोज्ज्वलम् ॥ १९ ॥ रत्नवल्लीमिव स्वच्छां श्वेतद्वीपनिवासिनीम् ॥ किरीटं पद्मरागाणां वलयं दधतं परम् ॥ २० ॥ मित्रस्य राहुवित्रासनिवर्त्तनमिवापरम् ॥ सकौस्तुभप्रभाचक्रं बिभ्राणं प्रवलारुणम् ॥ २१ ॥ परां चतुर्मुखोत्पत्तिकल्पसंकल्पनामिव ॥ शरणं स जगामाशु विनीतात्मा स्तुवन्निति ॥ २२ ॥ तस्मिन्नवसरे शम्भुः सर्वदेवगणैः सह ॥ तुष्टाव प्रयतो भूत्वा विष्णुं जिष्णुं सुरद्विषाम् ॥ २३ ॥ ईश्वर उवाच ॥ संसारार्णवसंतारसुपर्णसुखदायिने ॥ मोहतीव्रतमोहारिचन्द्राय हरये नमः ॥ २४ ॥ स्फुरत्संविन्मणिशिखां चित्तसंगतिचन्द्रिकाम् ॥ प्रपद्ये भगवद्भक्तिमानसोद्यानवाहिनीम् ॥ २५ ॥ हेलोल्लसत्समुत्साहशक्तिं व्याप्तजगत्त्रयाम् ॥ या पूर्वकोटिर्भावानां सत्त्वानां वैष्णवीति वा ॥ २६ ॥ पवनान्दोलिताम्भोजदलपर्यान्तवर्त्तिनाम् ॥ पतताामिव जन्तूनां

उसी अवसर में सब देवगणों समेत शिवजी ने पवित्र होकर दैत्यों को जीतनेवाले विष्णु की स्तुति किया ॥ २३ ॥ (महादेवजी बोले) कि संसारसमुद्र से उतारने वाले गरुड़ को सुख देनेवाले व मोहरूपी तीव्र अन्धकार को हरनेवाले चन्द्रमा के लिये प्रणाम है ॥ २४ ॥ चमकते हुए ज्ञानमणि की शिखावाली चित्त समागम की चन्द्रिकारूपी भगवद्भक्तिमानस के उद्यान में प्राप्त होनेवाली की शरण में मैं प्राप्त हूं ॥ २५ ॥ त्रिलोक में व्याप्त हेला से शोभित उत्साहशक्ति की शरण में मैं प्राप्त हूं सात्त्विकभावों की जो पूर्व कोटि व वैष्णवीशक्ति है ॥ २६ ॥ पवन से हिलाये हुए कमलदल के मध्य में वर्तमान गिरते हुए प्राणियों को स्थिरता

केवल विष्णु का स्मरण है ॥ २७ ॥ हृदयकमलकली की लक्ष्मी को उघारनेवाले ज्ञानरूपी किरणों से संयुत सूर्यात्मा आपके लिये प्रणाम है ॥ २८ ॥ उन यमवान् व सदैव योगियों की गति के लिये नमस्कार है तेज व अन्धकार के पार परमेश्वर के लिये प्रणाम है ॥ २९ ॥ हव्य को भोजन करने के लिये यज्ञरूप व ऋक्, यजुः, सामवेदस्वरूपी के लिये प्रणाम है तथा सरस्वती से गाये हुए दिव्य सद्गुणों से शोभित के लिये प्रणाम है ॥ ३० ॥ शान्त, धर्मनिधि, क्षेत्रज्ञ व अमृतात्मा तथा शिष्य के योग में प्रतिष्ठित जीव के एक कारण के लिये नमस्कार है व भयङ्कर माया विधि व सहस्रमौलि के लिये प्रणाम है ॥ ३१ ॥ व

स्थैर्यमेका हरिस्मृतिः ॥ २७ ॥ नमः सूर्यात्मने तुभ्यं संवित्किरणमालिने ॥ हृत्कुशेशयकोषश्रीसमुन्मेषविधायिने ॥ २८ ॥ नमस्तस्मै यमवते योगिनां गतये सदा ॥ परमेशाय वै पारे महसां तमसां तथा ॥ २९ ॥ यज्ञाय स्रुक्हविष ऋग्यजुःसामरूपिणे ॥ नमः सरस्वतीगीतदिव्यसद्गुणशालिने ॥ ३० ॥ शान्ताय धर्मनिधये क्षेत्रज्ञायामृतात्मने ॥ शिष्ययोगप्रतिष्ठाय नमो जीवैकहेतवे ॥ घोराय मायाविधये सहस्रशिरसे नमः ॥ ३१ ॥ योगनिद्रात्मने नाभिपद्मोद्भूतजगत्सृजे ॥ नमः सलिलरूपाय कारणाय जगत्स्थितेः ॥ ३२ ॥ कार्यमेयाय बलिने जीवाय परमात्मने ॥ गोप्त्रे प्राणाय भूतानां नमो विश्वाय वेधसे ॥ ३३ ॥ दृप्ताय सिंहवपुषे दैत्यसंहारकारिणे ॥ वीर्यायानन्तमनसे जगद्भावभृते नमः ॥ ३४ ॥ संसारकारणाज्ञानमहासन्तमसच्छिदे ॥ अचिन्त्यधाम्ने गुह्याय रुद्रायात्युद्विजे नमः ॥ ३५ ॥ शान्ताय

योगनिद्रात्मक तथा नाभिकमल से उत्पन्न संसार को रचनेवाले के लिये प्रणाम है और संसार की स्थिति के कारण जलरूप के लिये नमस्कार है ॥ ३२ ॥ कार्य से प्रमाण के योग्य परमात्मा जीव के लिये तथा प्राणियों के प्राण व रक्षा करनेवाले और विश्वरूप व वेधा के लिये प्रणाम है ॥ ३३ ॥ दैत्यों को संहार करनेवाले सिंहरूपी गर्वित आपके लिये प्रणाम है व वीर्यरूप तथा अमित मन व संसार के भाव को धारण करनेवाले के लिये प्रणाम है ॥ ३४ ॥ संसार के कारण व अज्ञानरूपी महाअन्धकार को नाशनेवाले के लिये तथा अचिन्तनीय तेज व गुप्तरूप और उद्वेगरूप रुद्र के लिये प्रणाम है ॥ ३५ ॥ व शान्तरूप तथा शान्त

कल्लोलवाले प्राणी को मोक्षपद देनेवाले के लिये प्रणाम है और सब भावों से अधिक व सर्वव्यापी आत्मा के लिये प्रणाम है ॥ ३६ ॥ नील कमलदल के समान श्याम व चमकते हुए केसर के विभ्रमवाले कौस्तुभधारी नेत्ररसायन विष्णु को मैं प्रणाम करता हूं ॥ ३७ ॥ अगस्त्यजी बोले कि इस प्रकार स्तुति किये हुए प्रसन्नचित्त वरदायक विष्णुजी ने दृष्टिसुधा से सब देवताओं के ऊपर वर्षा की व दयासंयुत विष्णुजी ने नम्रता से झुके हुए देवताओं से मधुर वचन कहा ॥ ३८ ॥ (श्रीभगवान् बोले) कि हे देवताओ ! मैं समाधि से तुम्हारा सब प्रयोजन जानता हूं कि युद्ध में गर्वित दैत्यों से तुम्हारा स्थान बल से आक्रमण किया गया है ॥३९॥

शान्तकल्लोलकैवल्यपददायिने ॥ सर्वभावातिरिक्ताय नमः सर्वमयात्मने ॥ ३६ ॥ इन्दीवरदलश्यामं स्फूर्जत्किञ्जल्कविभ्रमम् ॥ बिभ्राणं कौस्तुभं विष्णुं नौमि नेत्ररसायनम् ॥ ३७ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ इति स्तुतः प्रसन्नात्मा वरदो गरुडध्वजः ॥ ववर्ष दृष्टिसुधया सर्वान्देवान्कृपान्वितः ॥ उवाच मधुरं वाक्यं प्रश्रयावनतान्सुरान् ॥ ३८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ जानामि विबुधाः सर्वमभिप्रायं समाधितः ॥ दैतेयैर्विक्रमाक्रान्तं पदं समरदर्पितैः ॥ ३९ ॥ सबलैर्बलहीनानां प्रतापो विजितः परैः ॥ सांप्रतं तु विधास्यामि तपो युष्मद्बलाय वै ॥ ४० ॥ अयोध्यानगरे गत्वा करिष्ये तप उत्तमम् ॥ गुप्तो भूत्वा भवत्तेजोविवृद्ध्यै दैत्यशान्तये ॥ ४१ ॥ भवन्तोऽपि तपस्तीव्रं कुर्वन्त्वमलमानसाः ॥ अयोध्यां प्राप्य तां देवा दैत्यनाशाय सत्वरम् ॥ ४२ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ इत्युक्त्वान्तर्दधे देवान्देवो गरुडवाहनः ॥ अयोध्यामागतः क्षिप्रं चकार तप उत्तमम् ॥ ४३ ॥ गुप्तो भूत्वा यतो विद्वन्सुरतेजोऽभिवृद्धये ॥ तेन गुप्तहरि

सबल शत्रुओं से बलहीन तुमलोगों का प्रताप जीत लिया गया है इस समय तुमलोगों के पराक्रम के लिये तप करूंगा ॥ ४० ॥ अयोध्या नगर में जाकर गुप्त होकर तुमलोगों के तेज की वृद्धि के लिये व दैत्यों की शान्ति के लिये तप करूंगा ॥ ४१ ॥ निर्मल मनवाले आपलोग भी उस अयोध्या को प्राप्त होकर दैत्यों के नाश के लिये शीघ्र ही तप कीजिये ॥ ४२ ॥ अगस्त्यजी बोले कि देवताओं से यह कहकर गरुड़गामी विष्णुजी अन्तर्धान होगये व शीघ्र ही अयोध्या को आये और उन्होंने उत्तम तप किया ॥ ४३ ॥ हे विद्वन् ! जिसकारण गुप्त होकर देवताओं के तेज की वृद्धि के लिये विष्णुजी ने तप किया है उससे

गुप्तहरिनामक विष्णुदेवजी प्रसिद्ध हुए ॥ ४४ ॥ व पहले आये हुए विष्णुजी की हथेली से सुदर्शननामक वह चक्र गिरा है उससे चक्रहरि कहे गये हैं ॥ ४५ ॥ उन दोनों के दर्शनही से मनुष्य सब पापों से छूटजाता है विष्णुजी के उस प्रबल प्रभाव से देवता बड़े तेजस्वी हुए ॥ ४६ ॥ और सब दैत्यों को समरों से जीतकर व अपने स्थानों को पाकर बड़े आनन्दों से शोभित हुए तदनन्तर दैत्यों को विकल किया ॥ ४७ ॥ तदनन्तर बृहस्पति आदिक सब देवताओं ने शीघ्र ही मिलकर मस्तकों की माला से पूजित चरणकमलवाले विष्णुजी को प्रणाम किया व उत्कण्ठित वे देवता विष्णु को देखने के लिये अयोध्या में

नाम देवो विख्यातिमागतः ॥ ४४ ॥ आगतस्य हरेः पूर्वं यत्र हस्ततलाच्च्युतम् ॥ सुदर्शनाख्यं तच्चक्रं तेन चक्रहरिः स्मृतः ॥ ४५ ॥ तयोर्दर्शनमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ हरेस्तेन प्रभावेण देवाः प्रबलतेजसः ॥ ४६ ॥ जित्वा दैत्यान्रणैः सर्वान्संप्राप्य स्वपदान्यथ ॥ रेजिरे विपुलानन्दैरसुरानार्दयंस्ततः ॥ ४७ ॥ ततः सर्वे समेत्याशु बृहस्पतिपुरस्सराः ॥ देवाः सर्वेऽनमन्मौलिमालार्चितपदाम्बुजम् ॥ हरिं द्रष्टुमथागच्छन्नयोध्यायां समुत्सुकाः ॥४८॥ आगत्य च ततः श्रुत्वा नानाविधगुणादरम् ॥ भावैः पुण्यैः समभ्यर्च्य नत्वा प्राञ्जलयस्तदा ॥ हरिमेकाग्रमनसा ध्यायन्तो ध्याननिष्ठिताः ॥ ४९ ॥ तानागतान्समालोक्य पदभक्त्या कृतानतीन् ॥ प्रसन्नः प्राह विश्वात्मा पीतवासा जनार्दनः ॥ ५० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ भोभो देवा भवन्तश्च चिराद्दिष्ट्याद्य संगताः ॥ अधुना भवतामिच्छां कां करोमि सुरा अहम् ॥ तद्ब्रूत त्वरिता मह्यं किं विलम्बेन निर्भयाः ॥ ५१ ॥ देवा ऊचुः ॥ भगवन्देवदेवेश त्वया संप्रति

आये ॥ ४८ ॥ व आकर तदनन्तर अनेक भांति के गुणों से आदरवाले विष्णु को सुनकर पवित्रभावों से पूजकर व प्रणामकर उस समय हाथों को जोड़कर सावधान मन से विष्णु को ध्यान करते हुए ध्यान में स्थित हुए ॥ ४९ ॥ आये हुए उन सबों को देखकर चरणों की भक्ति से प्रणाम किये हुए उन सबों से प्रसन्न होकर पीतवसनवाले विष्णुजी ने कहा ॥ ५० ॥ (श्रीभगवान् बोले) कि हे देवताओ ! बड़े आनन्द की बात है कि आपलोग बहुत दिनों से आज आये हो इस समय हे देवताओ ! आपलोगों की मैं कौन इच्छा करूं यह शीघ्रही निडर होकर तुमलोग कहो देर से क्या है ॥ ५१ ॥ देवता बोले कि हे जगत्पते,

देवदेवेश, भगवन् ! इस समय तुमसे सब कार्य सिद्ध होगया ॥ ५२ ॥ हे विभो, देव ! तथापि हमारी रक्षा के लिये इन्द्रियमार्ग को जीतनेवाले तुमको सदैव यहीं होना चाहिये ॥ ५३ ॥ ऐसाही सदैव शत्रुपक्ष को नाश करना चाहिये ॥ ५४ ॥ श्री भगवान् बोले कि हे देवताओ ! इस प्रकार आपलोगों के शत्रुवों की जीत करूंगा व श्रीमान् आपलोगों के तेज की वृद्धि करूंगा और यह कथा संसार में उत्तमप्रसिद्धि को प्राप्त होवैगी ॥ ५५ ॥ व संसार में प्रसिद्ध नाम से यह गुप्तहरि देवजी मेरे परमगुप्त स्थान में प्रसिद्धि को प्राप्त होंगे ॥ ५६ ॥ प्राणियों में श्रेष्ठ जो मनुष्य उत्तम भक्ति से पूजन, यज्ञ व जपादिक करता है वह

सर्वेशः ॥ सर्वं समभवत्कार्यं निष्पन्नं वै जगत्पते ॥ ५२ ॥ तथापि सर्वदा भाव्यं नित्यं देव त्वया विभो ॥ अस्मद्रक्षार्थमत्रैव विजितेन्द्रियवर्त्मना ॥ ५३ ॥ एवमेव सदा कार्यं शत्रुपक्षविनाशनम् ॥ ५४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एवमेतत्करिष्यामि भवतामरिसंजयम् ॥ श्रीमतां तेजसो वृद्धिं करिष्यामि सदा सुराः ॥ कथेयं च सदा ख्यातिं लोके यास्यति चोत्तमाम् ॥ ५५ ॥ अयं नाम्ना गुप्तहरिर्देवो भुवनविश्रुतः ॥ मदीयं परमं गुह्यं स्थानं ख्यातिं समेष्यति ॥ ५६ ॥ अत्र यः प्राणिनां श्रेष्ठः पूजायज्ञजपादिकम् ॥ करोति परया भक्त्या स याति परमां गतिम् ॥ ५७ ॥ अत्र यः कुरुते दानं यथाशक्त्या जितेन्द्रियः ॥ स स्वर्गमतुलं प्राप्य न शोचति कदाचन ॥ ५८ ॥ अत्र मत्प्रीतये देवाः प्राणिभिर्धर्मकाङ्क्षिभिः ॥ दातव्या गौः प्रयत्नेन सवत्सा विधिपूर्वकम् ॥ ५९ ॥ स्वर्णशृङ्गी रौप्यखुरी वस्त्रद्वयसमावृता ॥ कांस्योपदोहना ताम्रपृष्ठी बहुगुणान्विता ॥ ६० ॥ रत्नपुच्छा दुग्धवती घण्टाभरणभूषिता ॥ अर्चिता गन्ध

उत्तमगति को प्राप्त होता है ॥ ५७ ॥ व जितेन्द्रिय जो मनुष्य शक्ति के अनुसार यहां दान करता है वह अतुल स्वर्ग को प्राप्त होकर कभी नहीं शोचता है ॥ ५८ ॥ हे देवताओ ! यहां मेरी प्रीति के लिये धर्म के चाहनेवाले प्राणियों को विधिपूर्वक बछड़ासमेत गौ बड़े यत्न से देना चाहिये ॥ ५९ ॥ सोने से शृङ्गों को मढ़कर व चांदी से खुरों को मढ़कर दो वस्त्रोंसमेत ताम्रपीठवाली व बहुत गुणों से संयुत कांसे की दोहनीवाली ॥ ६० ॥ व रत्नपुच्छी, दुग्धवती व घण्टा के

भूषण से भूषित, चन्दन व पुष्पादिकों से पूजित उत्तम प्रसन्न व उत्तम सन्तानवाली गौ को ॥ ६१ ॥ अक्रूरता में परायण निर्मल चित्तवाले, वेदज्ञ व गुणवान् विष्णुभक्त विद्वान् ब्राह्मण के लिये गौ देने योग्य है क्योंकि उससे मनुष्य सब कहीं सुख को पाता है ॥ ६२ ॥ केवल ब्राह्मण के लिये न देना चाहिये क्योंकि वह दाता को नरक में डालता है ॥ ६३ ॥ मेरी प्रीति के लिये निर्मल चित्तवाले पुरुष को गौ देना चाहिये ॥ ६४ ॥ मेरी भक्ति में परायण जो मनुष्य शुद्धि के लिये यहां स्नान करते हैं उनको स्वर्ग की गति होती है व मुक्ति सदैव हाथ में स्थित होती है ॥ ६५ ॥ व चक्रहरि के पीठ में मेरी प्रीति के लिये उत्तम दान व जप हवन

पुष्पाद्यैः सुप्रसन्नामृतप्रजा ॥ ६१ ॥ द्विजाय वेदविज्ञाय गुणिने निर्मलात्मने ॥ विष्णुभक्ताय विदुषे आनृशंस्यरताय च ॥ ६२ ॥ ब्राह्मणाय च गौर्देया सर्वत्र सुखमश्नुते ॥ न देया द्विजमात्राय दातारं सोऽवपातयेत् ॥ ६३ ॥ मत्प्रीतयेऽत्र दातव्या निर्मलेनान्तरात्मना ॥६४॥ स्नातं यैश्च विशुद्ध्यर्थमत्र मद्भक्तितत्परैः ॥ तेषां स्वर्गतयो नित्यं मुक्तिः करतले स्थिता ॥ ६५ ॥ तथा चक्रहरेः पीठे मत्प्रीत्यै दानमुत्तमम् ॥ जपहोमादिकं चापि कर्तव्यं यत्नतो नरैः ॥ ६६ ॥ भवन्तोऽपि विधानेन यात्रां कुर्वन्तु सत्तमाः ॥ अस्माद्गुप्तहरेः स्थानान्निकटे सङ्गमे शुभे ॥ ६७ ॥ प्रत्यग्भागे गोप्रताराद्योजनत्रयसंमिते ॥ घर्घराम्बुतरङ्गिण्या सरयूः सङ्गता यतः ॥ ६८ ॥ अत्र स्नात्वा विधानेन द्रष्टव्योऽत्र प्रयत्नतः ॥ देवो गुप्तहरिर्नाम सर्वकामार्थसिद्धिदः ॥ ६९ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ इत्युक्त्वान्तर्दधे देवः पीताम्बरधरोऽच्युतः ॥ देवा अपि विधानेन कृत्वा यात्रां प्रयत्नतः ॥ अयोध्यायां स्थिता नित्यं हरेर्गुणविमोहिताः ॥ ७० ॥ तदाप्रभृति

आदिक मनुष्यों को यत्न से करना चाहिये ॥ ६६ ॥ हे सत्तमो ! आपलोग भी विधि से यात्रा करिये इस गुप्तहरि के स्थान से निकट उत्तम संगम में ॥ ६७ ॥ गोप्रतार से पश्चिम भाग में तीन योजन के प्रमाण पर घर्घर जल की तरङ्गिणी से जहां सरयू का समागम है ॥ ६८ ॥ यहां विधि से नहाकर सब कामनाओं के अर्थ सिद्धिदायक गुप्तहरिनामक देव को यहां देखना चाहिये ॥ ६९ ॥ अगस्त्यजी बोले कि यह कहकर पीताम्बरधारी अच्युतदेवजी अन्तर्धान होगये देवता भी विधि से यात्रा करके विष्णु के गुणों से मोहित होते हुए बड़े यत्न से अयोध्या में स्थित हुए ॥ ७० ॥ तब से लगाकर हे द्विजेन्द्र ! वह स्थान पृथ्वी

देमें प्रसिद्ध हुआ कार्त्तिकी में विशेष कर वार्षिकी यात्रा होती है ॥ ७१ ॥ वहां विभु गुप्तहरिजी की यात्रा संगम में स्नानपूर्वक होती है सरयू घर्घर के आश्रित इस गोप्रतार तीर्थ में नहाकर सब कामनाओं के फल को देनेवाले यह देव पूजने योग्य हैं ॥ ७२ ॥ अगहन के शुक्लपक्ष में द्वादशी तिथि में मनुष्यों को चक्रहरि की यात्रा बड़े यत्न से करना चाहिये ॥ ७३ ॥ इस प्रकार जो यात्रा करता है वह विष्णुलोक में प्रसन्न रहता है ॥ ७४ ॥ सूतजी बोले कि ऐसा कहकर जब अगस्त्यमुनि चुप हो रहे तब व्यासजी विस्मित हो फिर बोले ॥ ७५ ॥ (व्यासजी बोले) कि हे तपोधन, ब्रह्मन्! तुमने अत्यन्त आश्चर्यमयी इस कथा को

विप्रेन्द्र तत्स्थानं भुवि पप्रथे ॥ कार्त्तिक्यां तु विशेषेण यात्रा सांवत्सरी भवेत् ॥ ७१ ॥ विभोर्गुप्तहरेस्तत्र सङ्गमस्नानपूर्विका ॥ गोप्रतारे च तीर्थेऽस्मिन्सरयूघर्घराश्रिते ॥ स्नात्वा देवोऽर्चनीयोऽयं सर्वकामफलप्रदः ॥ ७२ ॥ तथा चक्रहरेर्यात्रा कर्तव्या सुप्रयत्नतः ॥ मार्गशीर्षस्य विशदे पक्षे हरितिथौ नरैः ॥ ७३ ॥ एवं यः कुरुते यात्रां विष्णुलोके स मोदते ॥ ७४ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ एवमुक्त्वा तु विरते मुनौ कलशजन्मनि ॥ कृष्णद्वैपायनो व्यासः पुनराह सविस्मयः ॥ ७५ ॥ व्यास उवाच ॥ अत्याश्चर्यमयीं ब्रह्मन्कथामेतां तपोधन ॥ उक्तवानसि येनैतत्साश्चर्यं मम मानसम् ॥ ७६ ॥ विस्तरेण मम ब्रूहि माहात्म्यं परमाद्भुतम् ॥ ७७ ॥ शृणु सङ्गममाहात्म्यं विप्रेन्द्र परमाद्भुतम् ॥ स्कन्ददेवाच्छ्रुतं सम्यक्कथयामि तथा तव ॥ ७८ ॥ दशकोटिसहस्राणि दशकोटिशतानि च ॥ तीर्थानि सरयूनद्या घर्घरोदकसङ्गमे ॥ निवसन्ति सदा विप्र स्कन्दादवगतं मया ॥ ७९ ॥ देवानामसुराणां च सिद्धानां योगिनां तथा ॥ ब्रह्मविष्णु

कहा जिससे मेरा मन आश्चर्यसमेत होगया ॥ ७६ ॥ मुझसे बड़े अद्भुत माहात्म्य को विस्तार से कहिये ॥ ७७ ॥ हे द्विजेन्द्र! बड़ा अद्भुत संगम का माहात्म्य सुनिये जिस प्रकार मैंने स्वामिकार्त्तिकेय देवजी से सुना है उस प्रकार मैं तुमसे कहता हूं ॥ ७८ ॥ हे विप्र! सरयू नदी व घर्घरा जल के संगम में दश करोड़ हज़ार व दश करोड़ सौ तीर्थ सदैव बसते हैं यह मैंने स्वामिकार्त्तिकेयजी से सुना है ॥ ७९ ॥ देवताओं, दैत्यों, सिद्धों व योगियों तथा ब्रह्मा, विष्णु व

शिवकी सान्निध्य सदैव वहां स्थित है ॥ ८० ॥ उस संगम के जल में सावधान मनुष्य नहाकर व पितरों तथा देवताओं को तर्पण करके अपनी शक्ति के अनुसार दान देकर ॥ ८१ ॥ व विष्णुजी के मन्त्र से हवन करके पवित्र मनुष्य जिस फलको पाता है हे विप्र ! वह यहां सावधान मन होकर सुनिये जो कि तुमसे कहता हूं ॥ ८२ ॥ हज़ार अश्वमेध व सौ वाजपेय तथा कुरुक्षेत्र महाक्षेत्र में राहु से सूर्यग्रहण होने पर ॥ ८३ ॥ और प्रतिदिन सुवर्णदान में जो पुण्य होता है वह पुण्य होता है ॥ ८४ ॥ अमावस व पौर्णमासी में और दोनों द्वादशी तिथियों में और अयन तथा व्यतीपात में स्नान विष्णुलोक को देता

शिवानां च सान्निध्यं सर्वदा स्थितम् ॥ ८० ॥ तस्मिन्संगमसलिले नरः स्नात्वा समाहितः ॥ सन्तर्प्य पितृदेवांश्च दत्त्वा दानं स्वशक्तितः ॥ ८१ ॥ हुत्वा वैष्णवमन्त्रेण शुचिर्यत्फलमाप्नुयात् ॥ तदिहैकमना विप्र शृणु यत्कथयामि ते ॥ ८२ ॥ अश्वमेधसहस्रस्य वाजपेयशतस्य च ॥ कुरुक्षेत्रे महाक्षेत्रे राहुग्रस्ते दिवाकरे ॥ ८३ ॥ सुवर्णदाने यत्पुण्यमहन्यहनि तद्भवेत् ॥ ८४ ॥ अमावास्यां पौर्णमास्यां द्वादश्योरुभयोरपि ॥ अयने च व्यतीपाते स्नानं वैष्णवलोकदम् ॥ ८५ ॥ तिष्ठेद्युगसहस्रं तु पादेनैकेन यः पुमान् ॥ विधिवत्संगमे स्नायात्पौष्यां तदविशेषतः ॥ ८६ ॥ लम्बतेऽवाक्छिरा यस्तु युगानामयुतं पुमान् ॥ स्नातानां शुचिभिस्तोयैः संगमे प्रयतात्मनाम् ॥ ८७ ॥ व्युष्टिर्भवति या पुंसां न सा क्रतुशतैरपि ॥ ८८ ॥ पौषे मासि विशेषेण स्नानं बहुफलप्रदम् ॥ ८९ ॥ पौषे मासि विशेषेण यः कुर्यात्स्नानमादृतः ॥ ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा वर्णसंकरः ॥ स याति ब्रह्मणः स्थानं पुनरावृत्ति

है ॥ ८५ ॥ हज़ार युगों तक जो पुरुष एक पैर से खड़ा होता है और पौषी पौर्णमासी में जो विधिपूर्वक नहाता है उन दोनों को बराबर फल होता है ॥ ८६ ॥ जो पुरुष दश हज़ार युग तक नीचे मुख करके लटकता है पवित्र जल से संगम में नहानेवाले पवित्र चित्तवाले पुरुषों को ॥ ८७ ॥ जो फल होता है वह सैकड़ों यज्ञों से भी नहीं होता है ॥ ८८ ॥ पौष महीने में विशेष कर स्नान बहुत फलको देताहै ॥ ८९ ॥ पौष महीने में आदर से विशेष कर जो स्नान करता है वह पुनरावृत्ति

से रहित ब्रह्मा के स्थान को जाता है ॥ ६० ॥ व हे विप्र ! पौष महीने में जो घृतसंयुत उत्तम दीप विधिपूर्वक श्रद्धा से देता है उसका भी जो फल है उसको सुनिये ॥ ६१ ॥ कि थोड़ा या बहुत भी अनेक जन्मों में इकट्ठा किया हुआ जो पाप होवै वह सब शीघ्रही नाश होजाताहै जैसे जलमें स्थित नमक नाश हो जाता है ॥ ६२ ॥ व दीपदायक पुण्यभागी मनुष्य आयुर्बल, आरोग्य, ऐश्वर्य, सन्तान व उत्तम सौख्य फल को प्राप्त होता है ॥ ६३ ॥ व जो व्रतवान् विद्वान् मनुष्य पौष की शुक्लत्रयोदशी में यहां जागरण करता है वह विष्णुजी के मन्दिर को जाता है ॥ ६४ ॥ रात्रि में जागरण करता हुआ दीप देकर नियतचित्त व पवित्र

वर्जितम् ॥ ६० ॥ पौषे मासे तु यो दद्याद् घृताढ्यं दीपमुत्तमम् ॥ विधिवच्छ्रद्धया विप्र शृणु तस्यापि यत्फलम् ॥ ६१ ॥ नानाजन्मार्जितं पापं स्वल्पं बह्वपि वा भवेत् ॥ तत्सर्वं नश्यति क्षिप्रं तोयस्थं लवणं यथा ॥ ६२ ॥ आयुरारोग्यमैश्वर्यं संततीः सौख्यमुत्तमम् ॥ प्राप्नोति फलदं नित्यं दीपदः पुण्यभाङ्नरः ॥ ६३ ॥ यस्तु शुक्लत्रयोदश्यां पौषेऽत्र प्रयतो व्रती ॥ जागरं कुरुते धीरः स गच्छेद्भवनं हरेः ॥ ६४ ॥ जागरं विदधद्रात्रौ दीपं दत्त्वा तु सर्वशः ॥ होमं च कारयेद्विप्रो नियतात्मा शुचिव्रतः ॥ ६५ ॥ वैष्णवो विष्णुपूजां च कुर्वञ्छृण्वन्हरेः कथाम् ॥ गीतवादित्रनृत्यैश्च विष्णुतोषणकारकैः ॥ कथाभिः पुण्ययुक्ताभिर्जागृयाच्छर्वरीं नरः ॥ ६६ ॥ ततः प्रभाते विमले स्नात्वा विधिवदादरात् ॥ विष्णुं संपूज्य विप्रांश्च देयं स्वर्णादि शक्तितः ॥ ६७ ॥ स्वर्णं चान्नं च वासांसि यो दद्याच्छ्रद्धयान्वितः ॥ संगमे विधिवद्विद्वान्स याति परमां गतिम् ॥ ६८ ॥ वर्षे वर्षे तु कर्तव्यो जागरः पुण्यतत्परैः ॥ ६९ ॥ हरिः पूज्यो द्विजाः सम्यक्संतोष्याः

व्रतवाला ब्राह्मण हवन करावै ॥ ६५ ॥ वैष्णव मनुष्य विष्णुपूजन करता व विष्णु की कथा को सुनता हुआ विष्णु को प्रसन्न करनेवाले गान, वादित्र व नृत्यों से तथा पुण्ययुक्त कथाओं से रात्रि को जागै ॥ ६६ ॥ तदनन्तर प्रातःकाल निर्मल होनेपर विधिपूर्वक आदर से नहाकर विष्णु व ब्राह्मणों को पूजकर शक्ति के अनुसार सुवर्ण आदिक देना चाहिये ॥ ६७ ॥ श्रद्धासंयुत जो विद्वान् मनुष्य संगम में विधिपूर्वक सुवर्ण, अन्न व वस्त्रों को देता है वह उत्तम गति को प्राप्त होता है ॥ ६८ ॥ पुण्य में परायण पुरुषों को प्रतिवर्ष जागरण करना चाहिये ॥ ६९ ॥ विष्णु को पूजना चाहिये व शक्ति के अनुसार मनुष्यों को ब्राह्मणों का सन्तोष

करना चाहिये उससे विष्णुकी बड़ी प्रसन्नता होती है और पाप विफल होजाते हैं जैसे गरुड़ के देखने से सर्प विषरहित होजाते हैं ॥ १०० ॥ उसमें नहाकर स्वर्ग को जाता है व इसमें नहाकर मनुष्य सुखी होता है ॥ १ ॥ तीनों लोकों में जो कोई प्राणी हैं वे सब संगम में उत्पन्न जलों से तृप्त किये हुए परम तृप्ति को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥ इस संसार में दुःख से नष्टचित्तवाले सबही गति ढूंढ़नेवाले पुरुषों की संगम के समान गति नहीं होती है ॥ ३ ॥ संगम में स्नान करनेवाला पुरुष सात भूत व सात भविष्य सब पुश्तियों को अपना समेत तारताहै ॥ ४ ॥ सरयू व घर्घर के संगम में जो पुरुष आकर नहीं नहाते हैं वे इस संसार में जन्मान्ध

शक्तितो नरैः ॥ तेन विष्णोः परा तुष्टिः पापानि विफलानि च ॥ भवन्ति निर्विषाः सर्पा यथा तार्क्ष्यस्य दर्शनात् ॥ १०० ॥ तत्र स्नातो दिवं याति अत्र स्नातः सुखी भवेत् ॥ १ ॥ त्रिषु लोकेषु ये केचित्प्राणिनः सर्व एव ते ॥ तर्प्यमाणाः परां तृप्तिं यान्ति संगमजैर्जलैः ॥ २ ॥ भूतानामिह सर्वेषां दुःखोपहतचेतसाम् ॥ गतिमन्वेषमाणानां न संगमसमा गतिः ॥ ३ ॥ सप्तावरान्सप्त परान्पुरुषश्चात्मना सह ॥ पुंसस्तारयते सर्वान्संगमे स्नानमाचरन् ॥ ४ ॥ जात्यन्धैरिह ते तुल्यास्तथा पङ्गुभिरेव च ॥ समेत्यात्र च न स्नान्ति सरयूघर्घरसंगमे ॥ ५ ॥ वर्णानां ब्राह्मणो यद्वत्तथा तीर्थेषु संगमः ॥ सरयूघर्घरायोगे वैष्णवस्थो नरः सदा ॥ ६ ॥ अत्र स्नानेन दानेन यथाशक्त्या जितेन्द्रियः ॥ होमेन विधियुक्तेन नरः स्वर्गमवाप्नुयात् ॥ ७ ॥ नरो वा यदि वा नारी विधिवत्स्नानमाचरेत् ॥ स्वर्गलोकनिवासो हि भवेत्तस्य न संशयः ॥ ८ ॥ यथा वह्निर्दहेत्सर्वं शुष्कमार्द्रमथापि वा ॥ भस्मीभवन्ति पापानि तत्समागममज्जनात् ॥ ९ ॥

व जन्म पंगुवों के समान हैं ॥ ५ ॥ जैसे वर्णों के मध्य में ब्राह्मण है वैसे तीर्थों के मध्य में संगम है सरयू व घर्घरा के योग में मनुष्य सदा विष्णुलोक में स्थित रहता है ॥ ६ ॥ यहां यथाशक्ति स्नान व दान तथा विधिपूर्वक हवन से जितेन्द्रिय मनुष्य स्वर्ग को प्राप्त होता है ॥ ७ ॥ स्त्री या पुरुष जो विधिपूर्वक स्नान करता है उसका स्वर्गलोक में निस्सन्देह निवास होता है ॥ ८ ॥ जैसे अग्नि सूखे व भीगे सब को जलाती है वैसेही उस समागममें स्नान से पातक भस्म होजाते हैं ॥ ९ ॥

एक ओर अनेक विधि के फलोंवाले सब तीर्थ व एक ओर सरयू व घर्घरा से उत्पन्न संगम अधिक होताहै ॥ १० ॥ वेद में सब तीर्थों के स्नान का जैसा फल कहा गया है मनुष्यों को भलीभांति संगम में नहाने से वैसा फल होता है ॥ ११ ॥ हे अनघ ! संगम के समीप ही सब पातकों को नाशनेवाला दूसरा गोप्रतार नामक तीर्थ है ॥ १२ ॥ जिसमें स्नान व दान से मनुष्य कभी शोचता नहीं है गोप्रतार के समान तीर्थ न हुआ है न होवैगा ॥ १३ ॥ हे विद्वन् ! जैसे काशी में मणिकर्णिका वर्तमान है व हे विप्र ! जैसे उज्जयिनी में महाकाल स्थान है ॥ १४ ॥ व नैमिष में जैसे चक्रवावली उत्तम तीर्थ कही गई है वैसेही अयोध्या में बड़ाभारी

एकतः सर्वतीर्थानि नानाविधिफलानि वै ॥ सरयूघर्घरोत्पन्नसंगमस्त्वधिको भवेत् ॥ १० ॥ सर्वतीर्थावगाहस्य फलं यादृक्स्मृतं श्रुतौ ॥ तादृक्फलं नृणां सम्यग्भवेत्संगममज्जनात् ॥ ११ ॥ गोप्रताराभिधं तीर्थमपरं वर्ततेऽनघ ॥ सन्निधौ संगमस्यैव महापातकनाशनम् ॥ १२ ॥ यत्र स्नानेन दानेन न शोचति नरः क्वचित् ॥ गोप्रतारसमं तीर्थं न भूतं न भविष्यति ॥ १३ ॥ वाराणस्यां यथा विद्वन्वर्तते मणिकर्णिका ॥ उज्जयिन्यां यथा विप्र महाकालनिकेतनम् ॥ १४ ॥ नैमिषे चक्रवापी तु यथा तीर्थतमा स्मृता ॥ अयोध्यायां तथा विप्र गोप्रताराभिधं महत् ॥ १५ ॥ यत्र रामाज्ञया विद्वन्साकेतनगरीजनाः ॥ अवापुः स्वर्गमतुलं निमज्य परमांभसि ॥ १६ ॥ व्यास उवाच ॥ अवापुस्ते कथं स्वर्गं साकेतनगरीजनाः ॥ कथं च राघवो विद्वन्नेतत्कथय सुव्रत ॥ १७ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ सावधानः शृणु मुने कथामेतां सुविस्तरात् ॥ यथा जगाम रामोऽसौ स्वर्गं स च पुरीजनः ॥ १८ ॥ पुरा रामो विधायैव

गोप्रतार नामक तीर्थ है ॥ १५ ॥ हे विद्वन् ! जिसमें श्रीरामजी की आज्ञा से अयोध्यापुरी के लोगउत्तम जल में नहाकर अनुपम स्वर्ग को प्राप्त हुए हैं ॥ १६ ॥ व्यासजी बोले कि हे सुव्रत, विद्वन् ! वे अयोध्यापुरी के लोग कैसे स्वर्ग को प्राप्त हुए हैं व कैसे श्रीरामजी प्राप्त हुए हैं इसको कहिये ॥ १७ ॥ अगस्त्यजी बोले कि हे मुने ! इस कथा को सावधान होकर तुम विस्तार से सुनो कि जिस प्रकार यह रामजी और वे पुरी के लोग स्वर्ग को प्राप्त हुए हैं ॥ १८ ॥ पुरातन समय

देवकार्य करके भाइयों समेत निरालसी व वीरबुद्धि श्रीरामजी ने स्वर्ग को जाने के लिये मन किया ॥ १९ ॥ तदनन्तर गुप्त दूत से सुनकर कामरूपी वानर, ऋच्छ, गवय व राक्षसरूप होकर अनेक आये ॥ २० ॥ और देव, गन्धर्वपुत्र व ऋषिपुत्र होकर वानर श्रीरामजी का विनाश जानकर सबही आये ॥ २१ ॥ उन सब वानर-यूथपों ने श्रीरामजी के समीप जाकर कहा कि हे अनघ, राजन् ! तुम्हारे पीछे जाने के लिये हम यहां प्राप्त हुए हैं ॥ २२ ॥ हे पुरुषर्षभ, नृप, राम ! यदि हम सबों के विना तुम जावोगे तो बड़े दण्ड से हम सब मारे गये होवैंगे ॥ २३ ॥ उन ऋक्ष, वानर व राक्षसों का वचन सुनकर उस क्षण श्रीरामजी ने विभीषण

देवकार्यमतन्द्रितः ॥ स्वर्गं गन्तुं मनश्चक्रे भ्रातृभ्यां सह वीरधीः ॥ १९ ॥ ततो निशम्य चारेण वानराः कामरूपिणः ॥ ऋक्षगोपुच्छरक्षांसि समुत्पेतुरनेकशः ॥ २० ॥ देवगन्धर्वपुत्राश्च ऋषिपुत्राश्च वानराः ॥ रामक्षयं विदित्वा तु सर्व एव समागताः ॥ २१ ॥ ते राममनुगत्योचुः सर्वे वानरयूथपाः ॥ तवानुगमने राजन्संप्राप्ताः स्म इहानघ ॥ २२ ॥ यदि राम विनास्माभिर्गच्छेस्त्वं पुरुषर्षभ ॥ सर्वे खलु हताः स्याम दण्डेन महता नृप ॥ २३ ॥ श्रुत्वा तु वचनं तेषामृक्षवानररक्षसाम् ॥ विभीषणमुवाचाथ राघवस्तत्क्षणं गिरा ॥ २४ ॥ यावत्प्रजा धरिष्यन्ति तावद्देव विभीषण ॥ कारयस्व महद्राज्यं लङ्कां त्वं पालयिष्यसि ॥ २५ ॥ शाधि राज्यं च खल्वेतन्नान्यथा मे वचः कुरु ॥ प्रजास्त्वं रक्ष धर्मेण नोत्तरं वक्तुमर्हसि ॥ २६ ॥ एवमुक्त्वा तु काकुत्स्थो हनुमन्तमथाब्रवीत् ॥ वायुपुत्र चिरं जीव मा प्रतिज्ञां वृथा कृथाः ॥ २७ ॥ यावल्लोका वदिष्यन्ति मत्कथां वानरर्षभ ॥ तावत्त्वं धारय प्राणान्प्र

से वचन कहा ॥ २४ ॥ कि हे विभीषण ! जब तक प्रजा रहैं तब तक तुम बड़ा राज्य करो व लङ्का को पालन करो ॥ २५ ॥ और राज्य करो यह मेरा वचन अन्यथा न कीजिये तुम धर्म से प्रजाओं की रक्षा करो उत्तर कहने के योग्य नहीं हो ॥ २६ ॥ ऐसा कहकर श्रीरामजी ने हनुमान्जी से कहा कि हे पवनपुत्र ! बहुत दिनों तक जियो प्रतिज्ञा मत वृथा कीजिये ॥ २७ ॥ हे वानरर्षभ ! जब तक लोग मेरी कथा कहैं तब तक प्रतिज्ञा पालन करते हुए तुम प्राणों को धारण

करो ॥ २८ ॥ व अमृतभोजी मैन्द व द्विविद ये दोनों तब तक पृथ्वी में रहैं जब तक लोक रहैं ॥ २९ ॥ जो हमारे पुत्र व पौत्र होवैं उन की यहां वानर रक्षा करैं ऐसा सब वानरों से श्रीरामजी ने कहकर उस समय अन्य उन वानरों से कहा कि तुम लोग मेरे साथ चलो ॥ ३० ॥ रात्रि का प्रातःकाल होनेपर महाभुज व विशाल वक्षस्थलवाले कमललोचन श्रीरामजी ने पुरोधा वसिष्ठजी से कहा ॥ ३१ ॥ कि प्रकाशित अग्निहोत्र सब आगे जावैं और वाजपेय व अतिरात्र मेरे आगे जावैं ॥ ३२ ॥ तदनन्तर तेजस्वी वसिष्ठजी ने चित्त से सब निश्चय करके विधिपूर्वक महाप्रस्थान की विधि किया ॥ ३३ ॥ तदनन्तर रेशमी वसन धारे हुए

तिज्ञां प्रतिपालयन् ॥ २८ ॥ मैन्दश्च द्विविदश्चैव अमृतप्राशनावुभौ ॥ यावल्लोका धरिष्यन्ति तावदेतौ धरिष्य तः ॥ २९ ॥ पुत्रपौत्राश्च येऽस्माकं तान्रक्षन्त्विह वानराः ॥ एवमुक्त्वा तु काकुत्स्थः सर्वानथ च वानरान् ॥ मया सार्धं प्रयातेति तदा तान्राघवोऽब्रवीत् ॥ ३० ॥ प्रभातायां तु शर्वर्यां पृथुवक्षा महाभुजः ॥ रामः कमलपत्राक्षः पुरोधसमथाब्रवीत् ॥ ३१ ॥ अग्निहोत्राणि यान्त्वग्रे दीप्यमानानि सर्वशः ॥ वाजपेयातिरात्राणि निर्यान्तु च ममाग्रतः ॥ ३२ ॥ ततो वसिष्ठस्तेजस्वी सर्वं निश्चित्य चेतसा ॥ चकार विधिवत्कर्म महाप्रास्थानिकं विधिम् ॥ ३३ ॥ ततः क्षौमाम्बरधरो ब्रह्मचर्यसमन्वितः ॥ कुशानादाय पाणिभ्यां महाप्रस्थानमुद्यतः ॥ ३४ ॥ न व्याहरच्छुभं किंचिदशुभं वा नरेश्वरः ॥ निष्क्रम्य नगरात्तस्मात्सागरादिव चन्द्रमाः ॥ ३५ ॥ रामस्य सव्यपार्श्वे तु सपद्मा श्रीःसमाश्रिता ॥ दक्षिणे ह्रीर्विशालाक्षी व्यवसायस्तथाग्रतः ॥ ३६ ॥ नानाविधायुधान्यत्र धनुर्ज्याप्रभृतीनि च ॥ अनुव्रजन्ति काकुत्स्थं सर्वे पुरुषविग्रहाः ॥ ३७ ॥ वेदो ब्राह्मणरूपेण सावित्री सव्यदक्षिणे ॥ ॐकारोऽथ वषट्कारः

ब्रह्मचर्य समेत वशिष्ठजी हाथों से कुशों को लेकर महाप्रस्थान को उद्यत हुए ॥ ३४ ॥ सागर से चन्द्रमा के समान उस नगर से निकलकर नरेश श्रीरामजीने शुभ या अशुभ कुछ नहीं कहा ॥ ३५ ॥ श्रीरामजी के बायें ओर कमल समेत लक्ष्मीजी स्थित हुईं और दाहिने ओर विशाल लोचनोंवाली लज्जा और आगे उद्योग स्थित हुआ ॥ ३६ ॥ व धनुष तथा मौर्वी आदिक अनेक प्रकार के अस्त्र सब पुरुषरूप होकर श्रीरामजी के पीछे चले ॥ ३७ ॥ और ब्राह्मणरूप से वेद व सावित्री तथा

यज्ञ, दक्षिणा, ॐकार, वषट्कार सब उस समय श्रीरामजी के पीछे चले ॥ ३८ ॥ ऋषि, महात्मा व सब पर्वत स्वर्गद्वार के समीप स्थित श्रीरामजी के पीछे चले ॥ ३९ ॥ वैसेही रनिवास में प्राप्त स्त्रियां वृद्ध, बालक व दासियों समेत और द्वारपालों समेत श्रीरामजी के पीछे चलीं ॥ ४० ॥ व रनिवास समेत तथा शत्रुघ्न सहित भरतजी चले और जाते हुए श्रीरामजी के समीप आकर रघुवंश के अनुकूल ॥ ४१ ॥ सब ओर अग्निहोत्र समेत व पुत्रों तथा स्त्रियों समेत महात्मा ब्राह्मण लोग सब श्रीरामजी के पीछे चले ॥ ४२ ॥ व पुत्रों तथा बन्धुवों समेत, सेवकों समेत मन्त्री वे सब सेवकों समेत श्रीरामजी के पीछे चले ॥ ४३ ॥ तदनन्तर गुणों

सर्वे रामं तदाव्रजन् ॥ ३८ ॥ ऋषयश्च महात्मानः सर्वेचैव महीधराः ॥ अनुगच्छन्ति काकुत्स्थं स्वर्गद्वारमुप स्थितम् ॥ ३९ ॥ तथानुयान्ति काकुत्स्थमन्तःपुरगताः स्त्रियः ॥ सवृद्धाबालदासीकाः सपर्षद्द्वाररक्षकाः ॥ ४० ॥ सान्तःपुरश्च भरतः शत्रुघ्नसहितो ययौ ॥ रामं व्रजन्तमागम्य रघुवंशमनुव्रताः ॥ ४१ ॥ ततो विप्रा महात्मानः साग्निहोत्राः समंततः ॥ सपुत्रदाराः काकुत्स्थमनुगच्छन्ति सर्वशः ॥ ४२ ॥ मन्त्रिणो भृत्ययुक्ताश्च सपुत्राः सहबान्धवाः ॥ सर्वे ते सानुगाश्चैव ह्यनुगच्छन्ति राघवम् ॥ ४३ ॥ ततः सर्वाः प्रकृतयो हृष्टपुष्टजनावृताः ॥ गच्छन्तमनुगच्छन्ति राघवं गुणरञ्जिताः ॥ ४४ ॥ तथा प्रजाश्च सकलाः सपुत्राश्च सबान्धवाः ॥ राघवस्यानुगाश्चासन्दृष्ट्वा विगतकल्मषम् ॥ ४५ ॥ स्नाताः शुक्लाम्बरधराः सर्वे प्रयतमानसाः ॥ कृत्वा किलकिलाशब्दमनुयाताश्च राघवम् ॥ ४६ ॥ न कश्चित्तत्र दीनोऽभून्न भीतो नातिदुःखितः ॥ प्रहृष्टा मुदिताः सर्वे बभूवुः परमाद्भुताः ॥ ४७ ॥ द्रष्टुकामाश्च

से स्नेहवाले सब प्रजा लोग हृष्टपुष्ट जनों समेत जाते हुए श्रीरामजी के पीछे चले ॥ ४४ ॥ और पुत्रों समेत व बन्धुवों सहित सब प्रजा लोग पापहीन देखकर श्रीरामजी के अनुगामी हुए ॥ ४५ ॥ नहाये हुए श्वेत बसन को धारे पवित्र मनवाले सब लोग किलकिला शब्द करके श्रीरामजी के पीछे चले ॥ ४६ ॥ वहां कोई भीत, दीन व बहुत दुःखी न हुआ बरन प्रसन्न होकर बड़े अद्भुत सब हर्षित हुए ॥ ४७ ॥ राजा की मुक्ति को देखने की इच्छावाले सब देशनिवासी वे विष्णुजी

को देखही कर आकाशमार्ग से प्राप्त हुए ॥ ४८ ॥ ऋक्ष, वानर, राक्षस व पुरवासी लोग बड़ी भक्ति से आकर पीछे चले ॥ ४९ ॥ नगर में अन्तर्द्धान को प्राप्त भी वे प्राणी स्वर्गद्वार के समीप स्थित श्रीरामजी के पीछे चले ॥ ५० ॥ जो चराचर प्राणी श्रीरामजी को देखते थे वे सब स्वर्ग जाने में बुद्धि करते थे ॥ ५१ ॥ श्रीअयोध्याजी में कोई अत्यन्त सूक्ष्म भी वह प्राणी न था जो स्वर्गद्वार के समीप स्थित श्रीरामजी के पीछे न चलै ॥ ५२ ॥ इसके उपरान्त आधा योजन चल कर श्रीरामजी पश्चिम मुख चले और उन्होंने पवित्र जलवाली सरयू नदी को देखा ॥ ५३ ॥ इसके उपरान्त उस मुहूर्त में सब देवताओं व महात्मा ऋषियों से घिरे

निर्वाणं राज्ञो जनपदास्तथा ॥ संप्राप्तास्तेऽपि दृष्ट्वैव नभोमार्गेण चक्रिणम् ॥ ४८ ॥ ऋक्षवानररक्षांसि जनाश्च पुरवासिनः ॥ आगत्य परया भक्त्या पृष्ठतः समुपाययुः ॥ ४९ ॥ तानि भूतानि नगरे ह्यन्तर्द्धानगतान्यपि ॥ राघवं तेऽप्यनुययुः स्वर्गद्वारमुपस्थितम् ॥ ५० ॥ यानि पश्यन्ति काकुत्स्थं स्थावराणि चराणि च ॥ सत्त्वानि स्वर्गगमने मतिं कुर्वन्ति तान्यपि ॥ ५१ ॥ नासीत्सत्त्वमयोध्यायां सुसूक्ष्ममपि किंचन ॥ यद्राघवं नानुयाति स्वर्गद्वारमुपस्थितम् ॥ ५२ ॥ अथार्द्धयोजनं गत्वा नदीं पश्चान्मुखो ययौ ॥ सरयूं पुण्यसलिलां ददर्श रघुनन्दनः ॥ ५३ ॥ अथ तस्मिन्मुहूर्ते तु ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ सर्वैः परिवृतो देवैर्ऋषिभिश्च महात्मभिः ॥ आययौ तत्र काकुत्स्थं स्वर्गद्वारमुपस्थितम ॥ ५४ ॥ विमानशतकोटीभिर्दिव्याभिः सर्वतः वृतः ॥ दीपयन्सर्वतो व्योम ज्योतिर्भूतमनुत्तमम् ॥ ५५ ॥ स्वयंप्रभैश्च तेजोभिर्महद्भिः पुण्यकर्मभिः ॥ पुण्या वाता ववुस्तत्र गन्धवन्तः सुखप्रदाः ॥ ५६ ॥ सपुण्यपुष्पवर्षं च वायुयुक्तं महाजवम् ॥ गन्धर्वैरप्सरोभिश्च तस्मिन्सूर्यउपस्थितः ॥ ५७ ॥ सरयूसलिलं रामः पद्भ्यां

हुए लोकों के पितामह ब्रह्माजी स्वर्गद्वार को उपस्थित श्रीरामजी के समीप वहां आये ॥ ५४ ॥ सैकड़ों करोड़ दिव्य विमानों से सब ओर घिरे हुए श्रीरामजी ज्योतिर्भूत अति उत्तम आकाश को सब ओर से प्रकाशित करते हुए ॥ ५५ ॥ स्वयं प्रभावाले तेजों से व बड़े पुण्यकर्मियों से संयुत हुए वहां उत्तम पवन चलनेलगे जो कि सुगन्धित व सुखदायक थे ॥ ५६ ॥ व पवनसंयुत तथा बड़ी वेगवती पुष्पवृष्टि हुई और उस समय गन्धर्वों तथा अप्सराओं समेत सूर्यजी प्राप्त हुए ॥ ५७ ॥ उन

श्रीरामजी ने चरणों से सरयू का जल स्पर्श किया तदनन्तर देवताओं समेत ब्रह्माने स्तुति करने का प्रारंभ किया ॥ ५८ ॥ कि हे देव ! तुम लोकों के स्वामी हो तुम को कोई नहीं जानता है हे विशाललोचन ! तुमने पहले मुझको ग्रहण किया है ॥ ५६ ॥ लोकों की रचना में अक्षय व अचिन्त्य महद्भूत तुम्हीं हो हे महावीर्य ! तुम जिस शरीर को चाहते हो उस अपने शरीर में प्रवेश करो ॥ ६० ॥ ब्रह्माजी के वचन से अनुजों समेत उन श्रीरामजीने आपही इस वैष्णव तेज में प्रवेश किया तदनन्तर देवोत्तम विष्णु देह को देवता पूजने लगे ॥ ६१ ॥ और साध्य व पवन गण व इन्द्र समेत तथा अग्नि आदिक जो दिव्य ऋषिगण व

स समुपास्पृशत् ॥ ततो ब्रह्मा सुरैर्युक्तः स्तोतुं समुपचक्रमे ॥ ५८ ॥ त्वं हि लोकपतिर्देव न त्वां जानाति कश्चन ॥ अहं ते वै विशालाक्ष भूतपूर्वपरिग्रहः ॥ ५६ ॥ त्वमचिन्त्यं महद्भूतमक्षयं लोकसंग्रहे ॥ यामिच्छसि महावीर्य तां तनुं प्रविश स्वकाम् ॥ ६० ॥ पितामहस्य वचनादिदमेवाविशत्स्वयम् ॥ सुदिव्यं वैष्णवं तेजः संसारं स सहानुजः ॥ ततो विष्णुतनुन्देवाः पूजयन्तः सुरोत्तमम् ॥ ६१ ॥ साध्यामरुद्गणाश्चैव सेन्द्राः साग्निपुरोगमाः ॥ ये च दिव्या ऋषि गणा गन्धर्वाप्सरसस्तथा ॥ सुपर्णा नागयक्षाश्च दैत्यदानवराक्षसाः ॥ ६२ ॥ देवाः प्रहृष्टा मुदिताः सर्वे पूर्णमनोर थाः ॥ साधुसाध्विति ते सर्वे त्रिदिवस्था बभाषिरे ॥ ६३ ॥ अथ विष्णुर्महातेजाः पितामहमुवाच ह ॥ एषां लोकं जनौघानां दातुमर्हसि सुव्रत ॥ ६४ ॥ इमे तु सर्वे मत्स्नेहादायाताः सर्वमानवाः ॥ भक्ताश्च भक्तिमन्तश्च त्यक्तात्मा नोऽपि सर्वशः ॥ ६५ ॥ तच्छ्रुत्वा विष्णुकथितं सर्वलोकेश्वरोऽब्रवीत् ॥ लोकं सन्तानिकंनाम संस्थास्यन्ति हि

गन्धर्व तथा अप्सरा थीं और सुपर्ण, नाग, यक्ष, दैत्य, दानव व राक्षस ॥ ६२ ॥ और देवता प्रसन्न होते हुए सब मनोरथ से पूर्ण हुए व उन सब देवताओं ने बहुत अच्छा बहुत अच्छा ऐसा कहा ॥ ६३ ॥ इसके उपरान्त बड़े तेजस्वी विष्णुजी ने ब्रह्मा से कहा कि हे सुव्रत ! इन जनसमूहों को तुम लोक देने के योग्य हो ॥ ६४ ॥ ये सब मनुष्य मेरे स्नेह से आये हैं और सब भक्तिमान् भक्त लोगों ने शरीर को छोड़ा है ॥ ६५ ॥ वह विष्णुका वचन सुनकर ब्रह्माने कहा कि मनुष्य

सन्तानिक नामक लोक में स्थित होवैंगे ॥ ६६ ॥ इस स्वर्गद्वार तीर्थ में श्रीराम ही को ध्यान करता हुआ जो मनुष्य भक्ति से प्राणों को छोड़ता है वह उत्तम सन्तान नामक लोक को प्राप्त होता है ॥ ६७ ॥ ब्रह्मलोक के बाद सन्तानिक नामक लोक को सब प्राप्त होंगे अर्थात् वानर अपनी योनि में व राक्षस राक्षसी योनि में प्राप्त होंगे ॥ ६८ ॥ देवता व दैत्य शरीर से उत्पन्न जो प्राणी जिस योनि से निकले थे वे उसमें प्रवेश करेंगे और सूर्य के पुत्र सुग्रीवने सूर्यमण्डल में ॥ ६९ ॥ व ऋषि, नाग व यक्ष अपने कारण को प्राप्त होवैंगे देवेश ब्रह्माजी के वैसा कहने पर गोप्रतार में उपस्थित ॥ ७० ॥ वह जल सरयू में प्राप्त हुआ

मानवाः ॥ ६६ ॥ स्वर्गद्वारेऽत्र वै तीर्थे राममेवानुचिन्तयन् ॥ प्राणांस्त्यजति भक्त्या वै स संतानं परं लभेत् ॥ ६७ ॥ सर्वे संतानिकंनाम ब्रह्मलोकादनन्तरम् ॥ वानराश्च स्वकां योनिं राक्षसाश्चापि राक्षसीम् ॥ ६८ ॥ यस्या विनिःसृता ये वै सुरासुरतनूद्भवाः ॥ आदित्यतनयश्चैव सुग्रीवः सूर्यमण्डलम् ॥ ६९ ॥ ऋषयो नागयक्षाश्च प्रयास्यन्ति स्व कारणम् ॥ तथा ब्रुवति देवेशे गोप्रतारमुपस्थितम् ॥ ७० ॥ तज्जलं सरयूं भेजे परिपूर्णं ततो जलम् ॥ अवगाह्य जलं सर्वे प्राणांस्त्यक्त्वा प्रहृष्टवत् ॥ ७१ ॥ मानुषं देहमुत्सृज्य ते विमानान्यथारुहन् ॥ तिर्यग्योनिगता ये च प्रविश्य सरयूं तदा ॥ ७२ ॥ देहत्यागं च ते तत्र कृत्वा दिव्यवपुर्द्धराः ॥ तथान्यान्यपि सत्त्वानि स्थावराणि चराणि च ॥ ७३ ॥ प्राप्य चोत्तमदेहं वै देवलोकमुपागमन् ॥ तस्मिंस्तत्र समापन्ने वानरा ऋक्षराक्षसाः ॥ तेऽपि प्रविविशुः सर्वे देहान्निक्षिप्य वै तदा ॥ ७४ ॥ तदा स्वर्गं गताः सर्वे स्मृत्वा लोकगुरुं विभुम् ॥ जगाम त्रिदशैः सार्द्धं रामो हृष्टो महामतिः ॥ ७५ ॥

तदनन्तर जल परिपूर्ण होगया सब लोग जलमें नहाकर प्रसन्न के समान प्राणों को त्याग कर ॥ ७१ ॥ मनुजशरीर को छोड़कर वे विमानों पै चढ़ गये और जो तिर्यक् योनि में प्राप्त थे वे उस समय सरयू नदी में पैठकर ॥ ७२ ॥ वहां शरीर त्याग करके दिव्य देहधारी हुए और अन्य भी चराचर प्राणी ॥ ७३ ॥ उत्तम शरीर को पाकर देवलोक को गये वहां उन श्रीरामजी के शरीर त्यागने पर वानर, ऋक्ष व राक्षस वे सब भी उस समय शरीरों को त्याग कर ॥ ७४ ॥ लोकगुरु विष्णुजीको स्मरण करके सब उस समय स्वर्ग को गये प्रसन्न होते हुए महामति श्रीरामजी देवताओं समेत स्वर्ग को प्राप्त हुए ॥ ७५ ॥

इससे वह गोप्रतार नामक तीर्थ प्रसिद्ध हुआ गोप्रतार में उत्तम मोक्ष होता है अन्य तीर्थों में नहीं होता है ॥ ७६ ॥ हे विप्र ! सैकड़ों जन्मों से यदि यह योग मिलता है तो मुक्ति होती है और वह एक जन्म में मिलै या न मिलै ॥ ७७ ॥ गोप्रतार तीर्थ में निस्सन्देह विष्णुजी भक्ति से भलीभांति स्थित हैं एक जन्म से अन्य भी पुरुष योग व मोक्षको पाता है ॥ ७८ ॥ गोप्रतार तीर्थ में जो विद्वान् निश्चय कर नहाता है वह योगियों को भी दुर्लभ उत्तम स्थान में प्राप्त होता है ॥ ७९ ॥ कार्त्तिकी में विशेष कर जितेन्द्रिय मनुष्यों को नहाना चाहिये हे विप्रर्षे ! कार्त्तिक महीने में इन्द्र समेत सब देवता विशेष कर अयोध्या में गोप्रतार

अतस्तद्गोप्रताराख्यं तीर्थं विख्यातिमागतम् ॥ गोप्रतारे परो मोक्षो नान्यतीर्थेषु विद्यते ॥ ७६ ॥ जन्मान्तरशतै र्विप्र योगोऽयं यदि लभ्यते ॥ मुक्तिर्भवति तत्त्वेकजन्मना लभ्यते न वा ॥ ७७ ॥ गोप्रतारे न सन्देहो हरिर्भक्त्या सुनिष्ठितः ॥ एकेन जन्मनान्योऽपि योगमोक्षं च विन्दति ॥ ७८ ॥ गोप्रतारे नरो विद्वान्योऽपि स्नाति सुनिश्चितः ॥ विशत्यसौ परं स्थानं योगिनामपि दुर्लभम् ॥ ७९ ॥ कार्त्तिक्यां च विशेषेण स्नातव्यं विजितेंद्रियैः ॥ कार्त्तिके मासि विप्रर्षे सर्वे देवाः सवासवाः ॥ स्नातुमायान्त्ययोध्यायां गोप्रतारे विशेषतः ॥ ८० ॥ गोप्रतारसमं तीर्थं न भूतं न भविष्यति ॥ यत्र प्रयागराजोऽपि स्नातुमायाति कार्त्तिके ॥ ८१ ॥ निष्पापः कलुषं त्यक्त्वा शुक्लाङ्गः सितकञ्चुकः ॥ शुद्ध्यर्थं साधुकामोऽसौ प्रयागे मुनिसत्तम ॥ ८२ ॥ यानि कानि च तीर्थानि भूमौ दिव्यानि सुव्रत ॥ कार्त्तिक्यां तानि सर्वाणि गोप्रतारे वसन्ति वै ॥ ८३ ॥ गोप्रतारे जपो होमः स्नानं दानं च शक्तितः ॥ सर्वमक्षयतां याति

घाट में नहाने के लिये आते हैं ॥ ८० ॥ गोप्रतार के समान तीर्थ न हुआ है न होवैगा जहां प्रयागराजभी कार्त्तिक में नहाने के लिये आते हैं ॥ ८१ ॥ हे मुनि-सत्तम ! पाप को छोड़ कर पातकहीन पुरुष शुक्ल अंग व श्वेत जामा को पहन कर शुद्धि के लिये भलाई चाहनेवाला यह प्रयाग में जाता है ॥ ८२ ॥ हे सुव्रत ! पृथ्वी में जो कोई दिव्य तीर्थ हैं वे सब कार्त्तिकी में गोप्रतार में बसते हैं ॥ ८३ ॥ गोप्रतार में शक्ति के अनुसार श्रद्धा से जप, हवन, स्नान व दान और नियम

व व्रत सब अक्षयता को प्राप्त होता है ॥ ८४ ॥ पाप छोड़ने के लिये गोप्रतार को जावैंगे इस इच्छासे सबभी तीर्थ कार्त्तिक में प्राप्त होकर उस तीर्थ को जाते हैं ॥ ८५ ॥ गोप्रतार में स्नान करना सब पातकों का नाशक है गोप्रतार में मनुष्य नहाकर गुप्तहरि स्वामी को देखकर सब पापों से छूट जाता है इसमें विचार न करना चाहिये ॥ ८६ ॥ स्नानपूर्वक व्रत ग्रहण किये हुए श्रद्धासंयुत मनुष्यों को विष्णुको उद्देश करके विशेष कर ब्राह्मणों का पूजन करना चाहिये ॥८७॥ व चित्त को वश करनेवाले पुरुष को विष्णुजी की प्रसन्नता के लिये नियम व व्रतसे शोभित व वेदवित् अतिपवित्र ब्राह्मण के लिये शक्तिके अनुसार

श्रद्धया नियमव्रतम् ॥ ८४ ॥ कार्त्तिके प्राप्य तद्यान्ति तीर्थानि सकलान्यपि ॥ गोप्रतारं गमिष्यामः पापं त्यक्तुमि तीच्छया ॥ ८५ ॥ गोप्रतारे कृतं स्नानं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ गोप्रतारे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा गुप्तहरिं विभुम् ॥ सर्वपापैः प्रमुच्येत नात्र कार्या विचारणा ॥ ८६ ॥ विष्णुमुद्दिश्य विप्राणां पूजनं च विशेषतः ॥ कर्त्तव्यं श्रद्धया युक्तैः स्नान पूर्वं यतव्रतैः ॥ ८७ ॥ पयस्विनी च गौर्देया सालंकारा च शक्तितः ॥ विप्राय वेदविदुषे नियमव्रतशालिने ॥ ब्राह्मणा यातिशुचये विष्णुप्रीत्यै यतात्मना ॥ ८८ ॥ अन्नं बहुविधं हेम वासांसि विविधानि च ॥ दातव्यानि हरेः प्राप्त्यै भक्त्या परमया युतैः ॥ ८९ ॥ सूर्यग्रहे कुरुक्षेत्रे नर्मदायां शशिग्रहे ॥ तुलादानस्य यत्पुण्यं तदत्र दीपदानतः ॥ ९० ॥ घृतेन दीपको यस्य तिलतैलेन वा पुनः ॥ ज्वलते मुनिशार्दूल हयमेधेन तस्य किम् ॥ ९१ ॥ तेनेष्टं क्रतुभिः सर्वैः कृतं तीर्थावगाहनम् ॥ दीपदानं कृतं येन कार्त्तिके केशवाग्रतः ॥ ९२ ॥ नानाविधानि तीर्थानि भुक्तिमुक्तिप्रदानि च ॥

आभूषण समेत दूधवाली गऊ को देना चाहिये ॥ ८८ ॥ व परम भक्ति से संयुत पुरुषों को विष्णु की प्राप्ति के लिये बहुत प्रकार का अन्न, सुवर्ण व अनेक भांति के वस्त्रों को देना चाहिये ॥ ८९ ॥ सूर्यग्रहण में कुरुक्षेत्र में व चन्द्रमा के ग्रहण में नर्मदा नदी के समीप जो तुलादान का पुण्य होता है वह यहां दीपदान से होता है ॥ ९० ॥ हे मुनिशार्दूल ! जिसका दीपक घी से या तिल तैलसे यहां जलता है उसको अश्वमेध यज्ञ से क्या है ॥ ९१ ॥ जिसने विष्णु के आगे कार्त्तिक महीने में दीपदान किया है उसने सब यज्ञों से पूजन किया व तीर्थों का स्नान किया ॥ ९२ ॥ भोग व मोक्ष को देनेवाले अनेक प्रकार के तीर्थ हैं परन्तु

वे गोप्रतार के सोलहवें अंश के योग्य नहीं होते हैं ॥ ९३ ॥ वेदों के पारगामी ब्राह्मण के लिये जो यहां थोड़ा सुवर्ण देता है वह उत्तम गति को पाता है व अग्नि के समान दीप्त होता है ॥ ९४ ॥ हे द्विज ! त्रिलोक में प्रसिद्ध गोप्रतारनामक तीर्थ में विधि से अन्न को देकर वह फिर उत्पन्न नहीं होता है ॥ ९५ ॥ जो मनुष्य उसमें स्नान करता है व ब्राह्मणों को तृप्त करता है वह सौत्रामणि यज्ञ का फल पाता है ॥ ९६ ॥ वहां व्रत ग्रहण करके एक बार भोजन करनेवाला जो महीने भर स्थित होता है उसका जीवन भर में किया हुआ पाप यकायक नाश होजाता है ॥ ९७ ॥ हे तपोधन ! गोप्रतार में जो विधि से अग्नि में प्रवेश करते

गोप्रतारस्य तान्यत्र कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ ९३ ॥ स्वर्णमल्पं च यो दद्याद्ब्राह्मणे वेदपारगे ॥ शुभां गतिमवाप्नोति ह्यग्निवच्चैव दीप्यते ॥ ९४ ॥ गोप्रताराभिधे तीर्थे त्रिलोकीविश्रुते द्विज ॥ दत्त्वान्नं च विधानेन न स भूयोऽभिजायते ॥ ९५ ॥ तत्र स्नानं तु यः कुर्याद्विप्रान्संतर्पयेन्नरः ॥ सौत्रामणेश्च यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥ ९६ ॥ एकाहारस्तु यस्तिष्ठेन्मासं तत्र यतव्रतः ॥ यावज्जीवकृतं पापं सहसा तस्य नश्यति ॥ ९७ ॥ अग्निप्रवेशं ये कुर्युर्गोप्रतारे विधानतः ॥ ते विशन्ति पदं विष्णोर्निःसंदग्धं तपोधन ॥ ९८ ॥ कुर्वन्त्यनशनं येऽत्र विष्णुभक्त्या सुनिश्चिताः ॥ न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि ॥ ९९ ॥ अर्चयेद्यस्तु गोविन्दं गोप्रतारे हि मानवः ॥ दशसौवर्णिकं पुण्यं गोप्रतारे प्रकथ्यते ॥ २०० ॥ अग्निहोत्रफलो धूपो गोविन्दस्य समर्पितः ॥ भूमिदानेन सदृशं गन्धदानफलं स्मृतम् ॥ १ ॥ अत्यद्भुतमिदं विद्वन्स्थानमेतत्प्रकीर्तितम् ॥ कार्त्तिक्यां तु विशेषेण अत्र स्नात्वा शुचिव्रतः ॥ २ ॥ स्वर्गद्वारे नरः

हैं वे निस्सन्देह विष्णुजी के स्थान में प्रवेश करते हैं ॥ ९८ ॥ विष्णुभक्ति से जो भली भांति निश्चित पुरुष यहां अनशन व्रत करते हैं उनकी करोड़ों सौ कल्पों से भी पुनरावृत्ति नहीं होती है ॥ ९९ ॥ जो मनुष्य गोप्रतार में गोविन्दजी को पूजता है उसको गोप्रतार में दश अशर्फ़ियों का पुण्य होता है ॥ २०० ॥ व विष्णुजी को दिया हुआ दीप अग्निहोत्र यज्ञ के फल को देता है व चन्दनदान का फल पृथ्वीदान के समान कहा गया है ॥ १ ॥ हे विद्वन् ! यह अत्यन्त अद्भुत स्थान कहा गया है यहां पवित्र व्रतवाला पुरुष कार्त्तिकी में विशेष कर नहाकर ॥ २ ॥ व स्वर्गद्वार में नहाकर मनुष्य दश अशर्फ़ियों का फल पाता है व श्रद्धासंयुत

जो सुवर्ण को देता है वह स्वर्गवासी होता है ॥ ३ ॥ दश सुवर्ण (अशर्फ़ी) का फल देनेवाले उत्तम तीर्थ में ज्येष्ठ शुक्ल चतुर्दशी की उत्तम पर्व में रात्रि जागरण करै ॥ ४ ॥ उपास किये हुए नहाकर पवित्र पुरुष विष्णुपूजन में तत्पर होवै और अनेक भांति का फल करनेवाला दीप यत्न से देवै ॥ ५ ॥ कार्त्तिक में विष्णुजी के आगे जब तक मनुष्य जल में दीप देता है तब तक स्वर्ग व मृत्युलोक तथा रसातल में पुण्य गरजते हैं ॥ ६ ॥ पौर्णमासी में प्रातःकाल नहाकर निर्मलमन मनुष्य विष्णु को भली भांति पूजकर व आदर से श्राद्ध करके ॥ ७ ॥ तदनन्तर शक्ति के अनुसार अन्न को देकर व ब्राह्मणों को प्रसन्न करके वस्त्रादिकों से व भूषणों से

स्नात्वा दशस्वर्णफलं लभेत् ॥ स्वर्णदः स्वर्गवासी च यो दद्याच्छ्रद्धयान्वितः ॥ ३ ॥ सुतीर्थे पर्वणि श्रेष्ठे दशस्वर्णफलप्रदे ॥ ज्येष्ठशुक्लचतुर्दश्यां रात्रौ जागरणं चरेत् ॥ ४ ॥ उपोषितः शुचिः स्नातो विष्णुपूजनतत्परः ॥ दीपं दद्यात् प्रयत्नेन नानाफलविधायिनम् ॥ ५ ॥ तावद्गर्जन्ति पुण्यानि स्वर्गे मर्त्ये रसातले ॥ यावद्दद्याज्जले दीपं कार्त्तिके केशवाग्रतः ॥ ६ ॥ पौर्णमास्यां प्रभाते तु स्नात्वा निर्मलमानसः ॥ हरिं संपूज्य विधिवद्विधाय श्राद्धमादरात् ॥ ७ ॥ दत्त्वान्नं च यथाशक्त्या संतोष्य ब्राह्मणांस्ततः ॥ वस्त्रादिभिरलंकारैः संपूज्य द्विजदम्पती ॥ ८ ॥ विभुं गुप्तहरिं दृष्ट्वा संपूज्य तु विशेषतः ॥ नमस्कृत्यानु तत्तीर्थं शुचिस्तद्गतमानसः ॥ ९ ॥ स्वर्गद्वारे च विधिवन्मध्याह्ने स्नानमाचरेत् ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा विष्णुलोके महीयते ॥ १० ॥ इति परमविधानैर्गोप्रतारे विधाय प्रथितसुकृतमूर्तिः स्नानमुच्चैः प्रयत्नात् ॥ कलितनिखिलपापः पूजयित्वादरेणाच्युतममलविकाशो विष्णुसायुज्यमेति ॥ २११ ॥ इति श्रीषष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

ब्राह्मण पतिपत्नी को पूजकर ॥ ८ ॥ गुप्तहरि विभु को देखकर व विशेषकर पूजकर उसके बाद उस तीर्थ को प्रणाम करके पवित्र पुरुष उसमें मन को लगावै ॥ ९ ॥ स्वर्गद्वार में जो विधिपूर्वक मध्याह्न में स्नान करता है समस्त पातकों से शुद्धचित्त वह पुरुष विष्णुलोक में पूजा जाता है ॥ १० ॥ इस प्रकार प्रसिद्ध पुण्यमूर्ति मनुष्य उत्तम विधियों से गोप्रतारतीर्थ में बड़े यत्न से स्नान करके पापरहित निर्मल प्रकाशवाला वह विष्णुजी को आदर से पूजकर विष्णु की सायुज्यमुक्ति को प्राप्त होता है ॥ २११ ॥ इति वैष्णवखण्डान्तर्गतेऽयोध्यामाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिते भाषानुवादे स्वर्गद्वारगोप्रतारतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

दो० । सागर कुण्डादिकन कर है जिमि अतुल प्रभाव । सो सप्तम अध्याय में कह्यो चरित चितचाव ॥ अगस्त्यजी बोले कि सीताकुण्ड से वायव्य में गुणों से सुन्दर क्षीरोदक ऐसा कहा हुआ अन्य तीर्थ कहता हूं जो कि पुण्यराशि का एक स्थान व सब दुःखों का नाशक है ॥ १ ॥ पुरातन समय दशरथनामक राजा ने जहां आदर से पुत्र के लिये विधि से पुत्रेष्टिनामक यज्ञ किया है ॥ २ ॥ और आनन्द समेत उन्होंने बहुत दक्षिणावाला यज्ञ समाप्त किया वहां यज्ञ के अन्त में मूर्तिमान् यज्ञभोजी हाथ में हव्य से पूर्ण अति उत्तम सोने का पात्र करके देख पड़े उस हव्य में व्याप्त उत्तम विष्णुजी के तेज को चार विभाग करके राजा

अगस्त्य उवाच ॥ तीर्थमन्यत्प्रवक्ष्यामि क्षीरोदकमिति स्मृतम् ॥ सीताकुण्डाच्च वायव्ये वर्तते गुणसुन्दरम् ॥ पुण्यैकनिचयस्थानं सर्वदुःखविनाशनम् ॥ १ ॥ पुरा दशरथो राजा पुत्रेष्टिंनाम नामतः ॥ चकार विधिवद्यज्ञं पुत्रार्थं यत्र चादरात् ॥ २ ॥ क्रतुं समापयामास सानन्दो भूरिदक्षिणम् ॥ यज्ञान्ते क्रतुभुक्तत्र मूर्तिमान्समदृश्यत ॥ ३ ॥ हस्ते कृत्वा हेमपात्रं हविःपूर्णमनुत्तमम् ॥ तस्मिन्हविषि संकीर्णं वैष्णवं तेज उत्तमम् ॥ चतुर्विधं विभज्यैव पत्नीभ्यो दत्तवान्नृपः ॥ ४ ॥ यत्र तत्क्षीरसंप्राप्तिर्जाता परमदुर्लभा ॥ क्षीरोदकमिति ख्यातं तत्स्थानं पापनाशनम् ॥ उदकेनाभिव्यक्तं च उत्तमं च फलप्रदम् ॥ ५ ॥ तत्र स्नात्वा नरो धीमान्विजितेन्द्रिय आदरात् ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति पुत्रांश्च सुबहुश्रुतान् ॥ ६ ॥ आश्विने शुक्लपक्षस्य एकादश्यां जितव्रतः ॥ तत्र स्नात्वा विधानेन दत्त्वा शक्त्या द्विजन्मने ॥ ७ ॥ विष्णुं संपूज्य विधिवत्सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ पुत्रानवाप्नुयाद्विद्धि धर्मांश्च विधि

ने स्त्रियों के लिये दिया ॥ ३ । ४ ॥ जहां अति दुर्लभ उस क्षीर की प्राप्ति हुई है पापनाशक वह स्थान क्षीरोदक ऐसा प्रसिद्ध है जल से भी प्रकट वह स्थान उत्तम व फलदायक है ॥ ५ ॥ इन्द्रियों को जीते हुए मनुष्य उसमें आदर से नहाकर सब मनोरथों को पाता है व बहुत प्रसिद्ध पुत्रों को पाता है ॥ ६ ॥ कुँवार में शुक्लपक्ष की एकादशी में व्रत को जीते हुए मनुष्य उसमें विधि से नहाकर व ब्राह्मण के लिये शक्ति के अनुसार दान देकर ॥ ७ ॥ विधिपूर्वक विष्णु को पूज

कर मनुष्य सब मनोरथों को पाता है और पुत्रों व विधिपूर्वक धर्मों को पाता है ॥ ८ ॥ उस क्षीरोदक स्थान से नैर्ऋत्य दिशा में स्थित उदण्ड चण्ड भूषित बृहस्पति का कुण्ड प्रसिद्ध है ॥ ९ ॥ वह सब पापों का नाशक व पुण्य जलवाले तरङ्गों से युक्त है जहां साक्षात् बृहस्पति जी ने निवास कियाहै ॥ १० ॥ व उदार-बुद्धि बृहस्पतिजी ने अनेक मुनिगणों से युक्त सुन्दर यज्ञ को विधिपूर्वक किया है बहुत फलदायक व उत्तम पत्तों की छाया से संयुत वह कुण्ड पापियों को दुर्लभ है ॥ ११ ॥ इन्द्रादिक भी देवता जिसमें बड़े यत्न से नहाकर सुन्दरता व उदारता से तुन्दिल होकर मनोरथ के फल को प्राप्त हुए ॥ १२ ॥ जिसमें स्नान

वन्नरः ॥ ८ ॥ तस्मात्क्षीरोदकस्थानान्नैर्ऋते दिग्दले श्रितम् ॥ ख्यातं बृहस्पतेः कुण्डमुद्दण्डाचण्डमण्डितम् ॥ ९ ॥ सर्वपापप्रशमनं पुण्यामृततरङ्गितम् ॥ यत्र साक्षात्सुरगुरुर्निवासं किल निर्ममे ॥ १० ॥ यज्ञं च विधिवच्चक्रे बृहस्पति रुदारधीः ॥ नानामुनिगणैर्युक्तं रम्यं बहुफलप्रदम् ॥ सुपर्णच्छायसंपन्नं कुण्डं तत्पापिदुर्लभम् ॥ ११ ॥ इन्द्रादयोऽपि विबुधा यत्र स्नात्वा प्रयत्नतः ॥ मनोऽभीष्टफलं प्राप्ताः सौन्दर्यौदार्यतुन्दिलाः ॥ १२ ॥ यत्र स्नानेन दानेन नरो मुच्येत किल्बिषात् ॥ १३ ॥ भाद्रे शुक्ले तु पञ्चम्यां यात्रा तत्र फलप्रदा ॥ अन्यदापि गुरोर्वारे स्नानं बहुफलप्रदम् ॥ १४ ॥ बृहस्पतेस्तथा विष्णोः पूजां तत्र य आचरेत् ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके स मोदते ॥ १५ ॥ भवेद्बृहस्पतेः पीडा यस्य गोचरवेधतः ॥ तेनात्र विधिवत्स्नानं कार्यं संकल्पपूर्वकम् ॥ १६ ॥ होमं कृत्वा गुरोर्मूर्तिः सुवर्णेन विनिर्मिता ॥ स्थित्वा जले प्रदेया वै पीताम्बरसमन्विता ॥ १७ ॥ वेदज्ञायातिशुचये स्नात्वा पीडापनुत्तये॥

व दान से मनुष्य पाप से छूट जाता है ॥ १३ ॥ भादों में शुक्लपक्ष में पञ्चमी तिथि में वहां यात्रा फलदायिनी होती है अन्य समय में भी बृहस्पति के दिन उसमें स्नान बहुत फलदायक है ॥ १४ ॥ वहां जो मनुष्य विष्णु व बृहस्पति का पूजन करता है सब पापों से मुक्त वह विष्णुलोक में प्रसन्न होता है ॥ १५ ॥ जिसके गोचर के वेध से बृहस्पति की पीड़ा होवै उसको यहां संकल्पपूर्वक विधि से स्नान करना चाहिये ॥ १६ ॥ होम करके पीतवसन समेत सोने से बनाई हुई मूर्ति को जल में स्थित होकर वेदपात्र व अति पवित्र ब्राह्मण के लिये पीड़ा दूर होने के लिये नहाकर देना चाहिये और ग्रहों के जप की विधि से वहां हवन

करावै ॥ १७ । १८ ॥ ऐसा करने पर निस्सन्देह ग्रहों की पीड़ा नाश हो जाती है ॥ १६ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! उसके दक्षिण में उत्तम रुक्मिणीकुण्ड है जिसको श्रीकृष्णजी की प्यारी रुक्मिणी देवी ने आपही किया है ॥ २० ॥ वहां उस समय जल में विष्णुजी ने आपही निवास किया है स्त्री के स्नेह से वरदान से श्रीकृष्णजी ने उस कुण्ड को अधिक गुणवान् किया है ॥ २१ ॥ वहां पवित्र मनुष्य स्नान, दान व विष्णुमन्त्र से हवन करै और द्विजपूजन व विष्णुपूजन करै ॥ २२ ॥ कार्त्तिक के कृष्णपक्ष की नवमी में सब पापों के नाश के लिये वहां यत्न से वार्षिकी यात्रा करना चाहिये ॥ २३ ॥ यात्रा करके पुत्रविहीन पुरुष

होमंच कारयेत्तत्र ग्रहजाप्यविधानतः ॥ १८ ॥ एवं कृते न संदेहो ग्रहपीडा प्रणश्यति ॥ १६ ॥ तद्दक्षिणे मुनिश्रेष्ठ रुक्मिणीकुण्डमुत्तमम् ॥ चकारयत्स्वयं देवी रुक्मिणी कृष्णवल्लभा ॥ २० ॥ तत्र विष्णुः स्वयं चक्रे निवासं सलिले तदा ॥ वरप्रदानात्स्नेहेन भार्यायाः प्रगुणीकृतम् ॥ २१ ॥ तत्र स्नानं तथा दानं होमं वैष्णवमन्त्रकम् ॥ द्विजपूजां विष्णुपूजां कुर्वीत प्रयतो नरः ॥ २२ ॥ तत्र सांवत्सरी यात्रा कर्तव्या सुप्रयत्नतः ॥ ऊर्जकृष्णनवम्यां च सर्वपापा पनुत्तये ॥ २३ ॥ पुत्रवाञ्जायते वन्ध्यो यात्रां कृत्वा न संशयः ॥ नारीभिर्वा नरैर्वापि कर्तव्यं स्नानमादरात् ॥ २४ ॥ भुक्त्वा भोगान्समग्रांश्च विष्णुलोके स मोदते ॥ लक्ष्मीकामनया तत्र स्नातव्यं च विशेषतः ॥ २५ ॥ सर्वकाम मवाप्नोति तत्र स्नानेन मानवः ॥ रुक्मिणीश्रीपतिप्रीत्यै दातव्यं च स्वशक्तितः ॥ २६ ॥ कर्तव्या विधिवत्पूजा ब्राह्मणानां विशेषतः ॥ ध्येयो लक्ष्मीपतिस्तत्र शंखचक्रगदाधरः ॥ २७ ॥ पीताम्बरधरः स्रग्वी नारदादिभिरीडितः ॥

निस्सन्देह पुत्रवान् होता है स्त्रियों व पुरुषों को आदर से उसमें स्नान करना चाहिये ॥ २४ ॥ समस्त सुखों को भोगकर वह विष्णुलोक में प्रसन्न रहता है धन की इच्छा से वहां विशेष कर नहाना चाहिये ॥ २५ ॥ क्योंकि उसमें स्नान से मनुष्य सब मनोरथों को पाता है रुक्मिणी व विष्णुजी की प्रीति के लिये अपनी शक्ति के अनुसार दान देना चाहिये ॥ २६ ॥ और विधिपूर्वक ब्राह्मणों का पूजन विशेष कर करना चाहिये वहां शंख, चक्र, गदाधारी लक्ष्मीपति का ध्यान करना चाहिये ॥ २७ ॥ कि पीताम्बरधारी व माला को पहने तथा नारदादिकों से स्तुति किये हुए और गरुड़ पै सवार तथा महेन्द्रादिकों से

भूषित हैं ॥ २८ ॥ व सब मनोरथों की प्राप्ति के लिये वक्षस्थल में कौस्तुभ देख पड़ती है और अलसी के पुष्प के समान श्याम व कमल से निर्मल लोचन हैं ॥ २९ ॥ ऐसा ध्यान करने पर निस्सन्देह मनुष्य सब मनोरथों को पाता है और इस लोक में सुख को भोगकर वह विष्णुलोक में प्रसन्न रहता है ॥ ३० ॥ इसके उपरान्त कलिपापनाशक व विश्वासरूप अन्य पापनाशक तीर्थ को कहता हूं ॥ ३१ ॥ परम पवित्र, अनुपम व सब मनोरथों की सिद्धि का दायक धनयक्ष ऐसा परम विश्वासकारक तीर्थ प्रसिद्ध है ॥ ३२ ॥ रुक्मिणीकुण्ड के वायव्यदिशा में वह उत्तम तीर्थ कहा गया है वहां हरिश्चन्द्र राजा का बड़ा भारी धन था ॥३३॥

ताक्ष्यासनो मुकुटवान्महेन्द्रादिविभूषितः ॥ २८ ॥ सर्वकामफलावाप्त्यै वक्षोलक्षितकौस्तुभः ॥ अतसीकुसुमश्यामः कमलामललोचनः ॥ २९ ॥ एवं कृते न संदेहः सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ इह लोके सुखं भुक्त्वा हरिलोके स मोदते ॥ ३० ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि तीर्थमन्यदघापहम् ॥ कलिकिल्बिषसंहारकारकं प्रत्ययात्मकम् ॥ ३१ ॥ परं पवित्रमतुलं सर्वकामार्थसिद्धिदम् ॥ धनयक्षइतिख्यातं परं प्रत्ययकारकम् ॥ ३२ ॥ रुक्मिणीकुण्डवायव्यदिग्दले संस्मृतं शुभम् ॥ हरिश्चन्द्रस्य राजर्षेरासीत्तत्र धनं महत् ॥ ३३ ॥ तस्य रक्षार्थमत्यर्थं रक्षितो यक्ष उच्चकैः ॥ विश्वामित्रो मुनिः पूर्वं यदा चैव पराजयत् ॥ ३४ ॥ हरिश्चन्द्रं नरपतिं राजसूयकरं परम् ॥ राज्यं जग्राह सकलं चतुरङ्गबलान्वितम् ॥ ३५ ॥ तद्दशेऽदाच्च स मुनिर्धनं सकलमुत्तमम् ॥ तद्रक्षायै प्रयत्नेन यक्षं स्थापितवानसौ ॥ ३६ ॥ प्रमन्थुरइतिख्यातं प्रमोदानन्दमन्दिरम् ॥ रक्षां विदधतस्तस्य बहुयत्नेन सर्वशः ॥ ३७ ॥ तुतोष स मुनिर्धीमान्कदा

उसकी बहुत रक्षा के लिये यक्ष रक्षित हुए हैं पहले जब विश्वामित्र मुनि ने उत्तम राजसूय यज्ञ करनेवाले हरिश्चन्द्र राजा को पराजय किया और चतुरङ्गिणी सेना समेत सब राज्य को ले लिया ॥ ३४ । ३५ ॥ तब उन मुनि ने सब उत्तम धन को उनके वश में देदिया व उसकी रक्षा के लिये इसने बड़े यत्न से प्रमन्थुर ऐसे प्रसिद्ध बड़े आनन्द के मन्दिररूप यक्ष को स्थापित किया है बहुत यत्न से सबसे रक्षा करते हुए उसके ऊपर ॥ ३६ । ३७ ॥ किसी समय इन्द्रियों को जीते